ISSN-0971-8397

योजना

सितंबर 2013 | विकास को समर्पित मासिक | ₹ 10

सबके लिए शिक्षा

विशेष लेख

देशज भाषाओं की संकटपूर्ण स्थिति

जी. एन. देवी

भारत : भविष्य की शिक्षा महाशक्ति

सुमा चिटनिस

उच्च शिक्षा में भारतीय भाषाएं

तेजस्विनी निरंजना

कौशल सबके लिए

सुनीता सांधी एवं कुंतल सेनसरमा

हिमालय की नजाकत

वी. के. जोशी

विकास यात्रा

अल्पसंख्यकों के सशक्तीकरण के लिए 'ख़िदमत' हेल्पलाइन

जनजातीय मामलों के मंत्रालय,भारत सरकार ने अल्पसंख्यकों के लिए 'ख़िदमत' नाम से टॉल फ्री हेल्पलाइन शुरू की है। इस हेल्पलाइन से अल्पसंख्यकों को उनसे संबंधित विकास और कल्याणकारी कार्यक्रमों की जानकारी मिल सकेगी। फिलहाल इस सेवा का समय प्रत्येक कार्यदिवस में प्रात: 9 बजे से शाम 6 बजे तक रखा गया है। हेल्पलाइन की शुरुआती प्रतिक्रियाओं को देखकर मंत्रालय इस सेवा को बढ़ाकर चौबीसों घंटे का करने पर विचार कर सकता है। देश में मोबाइल फोन की बढ़ती पहुंच को देखते हुए मंत्रालय ने इस हेल्पलाइन के ज़रिये लोगों को विकास और कल्याणकारी कार्यक्रमों की सूचना देने का निश्चय किया। यह संबंधित समस्याओं के निवारण में भी मददगार होगी।

मंत्रालय द्वारा अल्पसंख्यकों को समर्पित इस टॉल फ्री हेल्पलाइन की ज़रूरत तब हुई जब यह महसूस किया गया कि लोगों को किसी ऐसे मंच की आवश्यकता है जिससे वे जानकारियों को सरल भाषा में ले सकें और अपने सवालों के जवाब पा सकें। साथ ही, यह भी देखा गया कि लोगों की पहुंच वेबसाइट पर उपलब्ध जानकारियों तक नहीं है या फिर वे उसे आसानी से उन्हें खोज नहीं पाते।

इस हेल्पलाइन के चालू होने से अब गांव या कहीं दूर क्षेत्र में बैठा कोई छात्र छात्रवृत्ति योजनाओं की जानकारी तुरंत ले सकेगा। इससे कोई भी बेरोज़गार अल्पसंख्यक युवा मंत्रालय की ओर से चलाए जा रहे कौशल विकास प्रशिक्षण एवं अवसरों आदि की जानकारी फौरन प्राप्त कर सकता है।

सीएनजी टैक्सी और ऑटोचालकों के लिए सामूहिक बीमा

सरकार ने राष्ट्रीय राजधानी और निकटवर्ती क्षेत्रों के सीएनजी टैक्सी और ऑटो रिक्शाचालकों के लिए सामूहिक बीमा का अनुमोदन किया है। इस योजना के अंतर्गत सीएनजी से चलने वाले ऑटोरिक्शा और टैक्सी चलाते समय चालक के साथ होने वाली दुर्घटना, मृत्यु या आजीवन विकलांगता शामिल है।

मुंबई में मई 2006 को ऑटोरिक्शा और टैक्सी चालकों के लिए शुरू की गई 'महासुरक्षा योजना' की तर्ज़ पर चलाई जा रही इस योजना को इंद्रप्रस्थ गैस लिमिटेड, दिल्ली और एनसीआर क्षेत्र, नोएडा, ग्रेटर नोएडा और गजियाबाद में अमल में लाने के लिए मार्गदर्शन करेगी।

आईजीएल सुरक्षा योजना दिल्ली और एनसीआर क्षेत्र, नोएडा, ग्रेटर नोएडा और गाजियाबाद के लगभग तीन लाख सीएनजी पंजीकृत ऑटोरिक्शा और टैक्सी चालकों को बीमा उपलब्ध कराएगी।

चालक की मृत्यु होने पर उसके द्वारा नामित व्यक्ति को डेढ़ लाख रुपये की राशि दी जाएगी। इसके अलावा प्रत्येक बच्चे को शिक्षा भत्ते के रूप में 25,000 रुपये और अधिकतम 50,000 रुपये दिए जाएंगे। दुर्घटना में फ्रेक्चर या अन्य इलाज के लिए 10,000 रुपये मुहैया कराए जाएंगे। चालक के आजीवन विकलांग होने की दशा में, रोज़गार ख़त्म हो जाने के एवज में 100 फीसदी राशि एकमुश्त प्रदान की जाएगी। आंशिक विकलांगता की हालत में 15,000 से लेकर 75,000 रुपये दिए जाएंगे। इस योजना का लाभ उठाने के लिए प्राथमिक शर्त केवल यह है कि सार्वजनिक परिवहन के चालक के पास पंजीकृत लाइसेंस हो।

आईजीएल के इस शुरुआती अभियान में यह आशा जताई जा सकती है कि इस योजना से दिल्ली और एनसीआर क्षेत्र, नोएडा, ग्रेटर नोएडा और गाजियाबाद के लगभग तीन लाख सीएनजी ऑटोरिक्शा और टैक्सी चालक लाभान्वित होंगे। इस योजना में वे चालक भी शामिल हो सकेंगे जो भविष्य में अपने वाहन को सीएनजी में परिवर्तित करेंगे। दिल्ली में इस समय लगभग सभी टैक्सी और ऑटोरिक्शा सीएनजी में बदले जा चुके हैं।

योजना

वर्ष : 58 • अंक : 9 • सितंबर 2013 • भाद्रपद-आश्विन, शक संवत 1935 • कुल पृष्ठ : 56

प्रधान संपादक
राजेश कुमार झा

वरिष्ठ संपादक
रेमी कुमारी

संपादक
ऋतेश पाठक

संपादकीय कार्यालय
538, योजना भवन, संसद मार्ग,
नयी दिल्ली-110 001
दूरभाष : 23717910, 23096738
टेलीफैक्स : 23359578
ई-मेल : yojanahindi@gmail.com
वेबसाइट : www.yojana.gov.in
www.publicationsdivision.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
वी.के. मीणा

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन)
सूर्यकांत शर्मा

दूरभाष : 26100207
फैक्स : 26175516
ई-मेल : pdjucir@gmail.com

आवरण : **जी. पी. धोपे**

इस अंक में

संपादकीय	–	5
भारत : भविष्य की शिक्षा महाशक्ति	सुमा चिटनिस	7
उच्च शिक्षा में भारतीय भाषाएं	तेजस्विनी निरंजना	11
नयी सदी की शिक्षा	चैतन्य प्रकाश	15
कौशल सबके लिए	सुनीता सांधी कुंतल सेनसरमा	19
शिक्षा के अधिकार का कानून, 2009 अवसर और चुनौतियां	अम्बरीष राय	23
देशज भाषाओं की संकटपूर्ण स्थिति	जी. एन. देवी	27
कौशल विकास की ओर एक लंबी यात्रा	शालिनी एस शर्मा	32
हिमालय की नजाकत	वी. के. जोशी	34
क्या है पढ़ना?	उषा शर्मा	37
क्या आप जानते हैं : हैशटैग/प्रस्तावित सरोगेसी कानून	–	42
अपनी भाषा में शिक्षा का सवाल	प्रियदर्शन	43
सरकारी शिक्षा से ही पूरा हो सकता है समान और सबको शिक्षा का सपना	महेश पुनेठा	45
हमें इसलिए चाहिए खाद्य सुरक्षा	योगिंदर के अलघ	48
शिक्षित भारत का स्वप्न और सामाजिक असमानताएं	ऋतु सारस्वत	50

योजना **हिंदी के अतिरिक्त असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, तमिल, उड़िया, पंजाबी, तेलुगु तथा उर्दू भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। पत्रिका मंगवाने हेतु, नयी सदस्यता, नवीकरण, पुराने अंकों की प्राप्ति एवं एजेंसी आदि के लिए मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर 'अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें : व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन), प्रकाशन विभाग, पूर्वी खंड** IV, **तल** VII, **आर.के.पुरम, नयी दिल्ली-66 दूरभाष** : 26100207, 26105590 तार : सूचनाप्रकाशन।

सदस्य बनने अथवा पत्रिका मंगाने के लिए आप हमारे निम्नलिखित बिक्री केंद्रों पर भी संपर्क कर सकते हैं : सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003 (दूरभाष : 24367260, 5610), हाल सं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 (दूरभाष : 23890205) * 701, सी- विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर, नवी मुंबई-400614 (दूरभाष : 27570686) * 8, एसप्लानेड ईस्ट, कोलकाता-700069 (दूरभाष : 22488030) * 'ए' विंग, राजाजी भवन, बंसल नगर, चेन्नई-600090 (दूरभाष : 24917673) * प्रेस रोड नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट, तिरुवनंतपुरम-695001 (दूरभाष : 2330650) * ब्लॉक सं-4, पहला तल, गृहकल्प, एमजी रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500001 (दूरभाष : 24605383) * फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलुरु-560034 (दूरभाष : 25537244) * बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ, पटना-800004 (दूरभाष : 2683407) * हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-H, अलीगंज, लखनऊ-226024 (दूरभाष : 2225455) * अंबिका कॉम्प्लेक्स, फर्स्ट फ्लोर, पालडी, अहमदाबाद-380007 (दूरभाष : 26588669) * के.के.बी. रोड, नयी कॉलोनी, मकान संख्या-7, चेनीकुटी, गुवाहाटी-781003 (दूरभाष : 2665090)

चंदे की दरें : वार्षिक : ₹ 100 **द्विवार्षिक :** ₹ 180; **त्रैवार्षिक :** ₹ 250; **विदेशों में वार्षिक दरें : पड़ोसी देश:** ₹ 530; **यूरोपीय एवं अन्य देश :** ₹ 730। ***योजना*** में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। ज़रूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिए *योजना* उत्तरदायी नहीं है।

आपकी राय

दुर्लभ अंक

योजना के जुलाई 2013 अंक की समूची सामग्री अत्यंत ज्ञानवर्धक और उपयोगी है। रेडियो और टेलीविज़न, विशेषकर राष्ट्रीय लोक प्रसारक संगठन प्रसार भारती के विभिन्न पहलुओं पर इतनी अधिक नवीनतम जानकारी एक साथ मिलना अत्यंत दुर्लभ है। आपने लेखकों का चयन काफी सूझबूझ के साथ किया है क्योंकि अधिकतर लेखक अनुभवी तथा विषय के विशेषज्ञ हैं। यही कारण है कि लेखों में आकाशवाणी तथा दूरदर्शन की गतिविधियों की संतुलित व्याख्या के साथ-साथ लोक प्रसारक संगठन के कर्तव्यों एवं विवशताओं का भी विस्तार से उल्लेख देखने को मिला। आनंद प्रधान की यह बात काफी हद तक सही है कि ज़मीनी स्तर पर प्रसार भारती में स्वायतत्ता दिखाई नहीं देती। सामुदायिक रेडियो की विस्तृत जानकारी ने अंक को और उपयोगी बना दिया है। सामुदायिक रेडियो गांवों में विकास के कारगर माध्यम के रूप में उभर रहा है। वास्तव में सामुदायिक रेडियो ही भारत में प्रसारण का भविष्य है। सामुदायिक रेडियो के इतिहास, चुनौतियों और संभावनाओं को चित्रित करते विनोद चंद्र अग्रवाल तथा राम भट्ट व सविता बैलूर के लेख युवा और प्रौढ़ दोनों तरह के पाठकों को रुचिकर लगेंगे। ऐसा संपूर्ण तथा रोचक अंक निकालने के लिए *योजना* के संपादक मंडल को बधाई।

सुभाष सेतिया
द्वारका, नई दिल्ली
ई-मेल : setia_subhash@yahoo.co.in

अंतर्मन को छू गया

योजना का जुलाई अंक कई मायने में अद्भुत व अनूठा लगा। संपादक सहित सभी को साधुवाद जिन्होंने लोकसेवा प्रसारण के हर मुद्दे को रखकर उसे सुलझाने की कोशिश की है। जिसमें विद्वान लेखकों के आलेख वस्तुस्थिति को रखते प्रतीत होते हैं।

रेडियो कार्यक्रमों की गाथा कहता लीलाधर मंडलोई का लेख 'सिनेमा के लिए रेडियो' बड़ा रोचक लगा। वे स्मृतियां फिर से ताज़ा हो गईं जो बरसों से जेहन में दर्ज थीं। क्षमा शर्मा का लेख 'जिस तरह तू बोलता है उस तरह तू पढ़' सचमुच अंतर्मन को छू गया। 'भारत में सामुदायिक रेडियो की चुनौतियां और अवसर' 'राम भट्ट; सविता बैलूर का लेख महत्वपूर्ण लगा। 'लोक सेवा प्रसारण' की वास्तविकता से रू-ब-रू कराता *योजना* का यह अंक संग्रहणीय है।

रविंद्र गिन्नौरे
रायपुर, भाटापारा

विकास में सहायक

योजना का जुलाई 2013 अंक पढ़ा। अंक से लोक सेवा प्रसारण के संदर्भ में सारगर्भित व ज्ञानवर्द्धक जानकारी मिली। प्रकाशन विभाग द्वारा प्रकाशित यह मासिक पत्रिका प्रशासनिक सेवाओं के परीक्षाओं में समर्पित विद्यार्थियों के लिए रामबाण है। मैं अप्रैल 2009 से इस पत्रिका का अध्ययन कर रहा हूं, जब मैं स्नातक प्रथम वर्ष का छात्र था। इस पत्रिका के माध्यम से ही मैं अपनी लेखन क्षमता, विश्लेषण क्षमता का विकास कर पा रहा हूं। दुनिया के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश भारत के संदर्भ में लोक प्रसारण सेवा का काफी महत्व है। प्रसारण सेवाएं लोकतंत्र के विकास में काफी सहायक होती हैं।

प्रसार भारती की स्थापना 'प्रसार भारती अधिनियम' 1990 के तहत 28 नवंबर, 1997 को किया गया। प्रसार भारती की स्थापना के समय दूरदर्शन के केवल दो चैनल, डीडी-1 और डीडी-2 थे। डीडी-2 केवल मेट्रो शहरों में शुरू किया गया और बाद में प्रादेशिक मोड़ पर इसका प्रसारण अन्य शहरों तक किया गया, जिसके फलस्वरूप गांव-गांव तक प्रसार भारती की पहुंच हो गई। इन सेवाओं के कारण लोगों में जागरुकता आई है। वे देश और दुनिया से जुड़ रहे हैं।

लोक सेवा प्रसारण में वैश्वीकरण, उदारीकरण और 1990 के बाद से व्यापक बदलाव आया है। पूंजीवादी वैश्वीकरण के प्रहार ने सांस्कृतिक उद्योगों के केंद्रीकृत स्वामित्व को उत्पादन, वितरण, नियमन के माहौल, राजनीतिक क्रिया-कलापों को कॉरपोरेट

महारथियों तक सीमित कर दिया है। यदि हम समाचार चैनलों की क्रियाकलापों पर गौर करें, तो स्पष्ट होता है कि मीडिया मनोरंजन का खाली डिब्बा बनकर रह गया है। इस संदर्भ में बर्नार्ड का यह कथन उचित लगता है कि 'जनसंचार मीडिया के व्यावसायीकरण का तर्क़ है कि विज्ञापन राजस्व कार्यक्रमों के निर्माण पर इस क़दर प्रभावी है कि रोचक और लोकप्रिय कार्यक्रमों की गुंजाइश कम रह जाती है। इससे ऐसे वातावरण का निर्माण होता हैं कि विज्ञापन के संदेश प्रसारित करने के क्रम में जो कार्यक्रम चल रहे हैं, वे अवांछित, चुनौतीरहित और शिथिल बनकर रह जाते हैं।'

टेलीविज़न चैनलों पर प्रसारित होने वाले कुछ कार्यक्रमों को छोड़कर, अधिकांश कार्यक्रम सकारात्मक सामाजिक संदेश पर बल नहीं देते हैं। वे विज्ञापन पर ज्यादा बल देते हैं। फिर भी निष्कर्ष के तौर पर कहा जा सकता है कि इसने लोकतांत्रिक मूल्यों, सांस्कृतिक, रचनात्मक मूल्य, शैक्षिक मूल्य और सामाजिक मूल्यों में मज़बूती लाने का काम किया है। विशेष लेख के अंतर्गत के.पी. मोहनन के लेख ने सर्वाधिक प्रभावित किया। इसके अतिरिक्त विनोद पवराला, रामचंद्र शुक्ल, जवाहर सरकार, राजीव शुक्ल, विकास चंद्र, अरविंद सिंहल, विनोद अग्रवाल सहित सभी लेखकों के लेख अच्छे लगे।

अमित कुमार गुप्ता
रामपुर नौसहन, हाजीपुर, वैशाली, बिहार

बीसवीं शताब्दी के आश्चर्य- रेडियो

मैंने *योजना* का जुलाई '13 अंक पढ़ा जो लोक सेवा प्रसारण पर केंद्रित था। यह अंक अपने-आप में मिसाल है। इस अंक में सभी लेखकों के आलेख एवं सूचनाएं जानकारियों से भरा और ज्ञानोपयोगी है। जवाहर सरकार, अरविंद सिंहल, मार्क टली, विनोद पवराला, के.पी. मोहनन आदि लेखक विशेष उल्लेखनीय हैं। पत्रिका के कवर द्वितीय एवं तृतीय में रेडियो और दूरदर्शन पर काफी जानकारी दी गई है।

अमरीका सरकार ने रेडियो और इंटरनेट को आधुनिक युग का आश्चर्य घोषित किया है। 1892 में अमरीका के मर्रे शहर में बिना तारों के रेडियों के प्रसारण का प्रयोग किया गया था। यह प्रयोग अमरीका के वैज्ञानिकों रेजीना एंड फैशन डेन ने किया था।

डॉ. डी.ली. फास्ट ने सन् 1906 में एक ऐसे वैक्यूम ट्यूब का आविष्कार किया जिससे ध्वनि का प्रसारण संभव हो सका। सर्वप्रथम अमरीका ने ही सन् 1912 में वायरलेस को रेडियो की संज्ञा दी। अमरीका के पिट्सबर्ग में सन् 1920 में प्रसारण केंद्र स्थापित किया गया परंतु 23 जनवरी, 1920 को चेम्सफोर्ड से मारकोनी कंपनी ने सर्वप्रथम रेडियो प्रसारण किया। प्रसारण का नियमित स्वरूप बीबीसी द्वारा सन् 1920 में शुरू किया गया।

अन्य देशों की भांति भारत में भी कुछ निजी कंपनियों ने प्रसारण प्रारंभ किया था। 'बॉम्बे क्लब' ने अपना प्रथम प्रसारण जून 1923 में किया था। 'मद्रास रेडियो क्लब' ने 40 वॉट के ट्रांसमीटर द्वारा 31 जुलाई, 1924 से प्रसारण शुरू किया। बाद में 200 वॉट के ट्रांसमिशन से प्रतिदिन सायंकाल ढाई घंटे का प्रसारण किया जाने लगा। लेकिन कुछ दिन बाद आर्थिक तंगी की वजह से 'मद्रास रेडियो क्लब' ने प्रसारण बंद कर दिया।

व्यवस्थित प्रसारण की शुरुआत 'इंडियन ब्रॉडकास्टिंग कंपनी' ने 1927 में की। 23 जुलाई, 1927 में बंबई तथा अगस्त 1927 ई. में कलकत्ता से प्रसारणों की शुरुआत हुई। सन् 1934 के पश्चात प्रसारण सुविधाओं की वृद्धि हुई। बीबीसी के इलेक्ट्रिकल्स इंजीनियर लियोन फील्डेन को प्रसारण का प्रथम नियंत्रक बनाया गया। 11 जनवरी, 1936 को दिल्ली रेडियो स्टेशन का उद्घाटन हुआ तथा 8 जून, 1936 को रेडियो का 'ऑल इंडिया रेडियो' नाम तत्कालीन वायसराय लॉर्ड लिनलिथगों द्वारा दिया गया। तत्पश्चात अनेक शहरों में रेडियो केंद्रों की स्थापना की गई। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय पूरे देश में नौ केंद्र थे। जिनमें भारत में छह रहे– दिल्ली, बंबई, कलकत्ता, मद्रास, लखनऊ और तिरुचिरापल्ली तथा तीन पाकिस्तान में चले गए– लाहौर, पेशावर और ढाका। सरदार बल्लभ भाई पटेल देश के प्रथम सूचना एवं प्रसारण मंत्री बने।

स्वतंत्रता के पश्चात प्रसारण क्षेत्रों में विकास के लिए हर पंचवर्षीय योजना में योजनाबद्ध तरीक़े से क़दम उठाए गए, जिससे पूरे देश में आकाशवाणी का जाल-सा फैल गया। सन् 1957 में रेडियो सारभोण की तरह श्रोताओं के मनोरंजन के लिए भारत में 'विविध भारती' सेवा प्रारंभ किया गया। इसी वर्ष 'ऑल इंडिया रेडियो' का नाम 'आकाशवाणी' कर दिया गया। सन् 1967 ई. में विज्ञापन प्रसारण सेवा की शुरुआत हुई। 30 अक्टूबर, 1984 ई. को प्रथम लोकल रेडियो स्टेशन की (एलआरएस) शुरुआत नागर कोइल (तमिलनाडु) में हुई। 18 मई, 1988 को 'नेशनल चैनल' का प्रारंभ हुआ। 23 नवंबर, 1997 से 'प्रसार भारती' ने काम करना शुरू किया और आज आकाशवाणी 'प्रसार भारती' के अधीनस्थ कार्यरत एक संस्था है।

आकाशवाणी जनसंचार का एक सशक्त माध्यम है। बाज़ारवाद या उपभोक्तावाद संस्कृति के होते हुए भी आकाशवाणी ने अपने स्तर व गरिमा से समझौता नहीं किया है। आकाशवाणी का अपनी क्षमता व प्रसार शक्ति के महत्व को समझते हुए लोगों की आवश्यकताओं के अनुरूप निरंतर अपने आपको चलते रहने की प्रक्रिया से गुज़रना पड़ रहा है। यह निर्विवाद रूप से सभी मानते हैं कि सूचना व समाचार पहुंचाने के क्षेत्र में आकाशवाणी सबसे आगे है। करगिल हो या भुज, पोलियो हो या एड्स, कुष्ठ टीबी ख़त्म कराने में आकाशवाणी की प्रभावशाली भूमिका को सबने जाना व समझा है। आज आकाशवाणी से कई तरह के कार्यक्रम संचालित किए जाते हैं उनमें बच्चों, महिलाओं, वृद्धों के लिए कार्यक्रम शामिल हैं। आज आकाशवाणी ने देश के हर गांव, हर घर तक पहुंच बना ली है। यह माध्यम मनोरंजन, शिक्षा और सूचना का सशक्त माध्यम है। इसकी लोकप्रियता और इसकी पहुंच को देखकर अमरीका सरकार ने इसे बीसवीं शताब्दी के आश्चर्य की संज्ञा दी है। इसने पूरे विश्व में अपना जाल फैला दिया है, कोई क्षेत्र अछूता नहीं है।

शशिशेखर श्रीवास्तव
छपरा, बिहार

बदल सकती है तस्वीर

लोक सेवा प्रसारण अंक पढ़ा। इसमें आकाशवाणी से जुड़े रोचक तथ्यों की जानकारी लाभदायक रही। कहीं रेडियो के सामने वर्तमान में उपस्थित चुनौतियों को रेखांकित करती लोक सेवा प्रसारण जानदार और उपयोगी रही। संपादकीय भी सारगर्भित लगा। आपने सही लिखा है कि संभावनाओं की खोज और संरचना हेतु लोक सेवा प्रसारण के मौजूदगी रेडियो के प्रतिमानों से शायद परे है। बेहतर परिणामों के लिए हमें इन नयी तकनीकी उपलब्धियों का समुचित लाभ लेकर देश के विकास की कड़ी में एक अति मज़बूत कड़ी खोज सकते हैं। जन-जन की ज़िंदगी पहले से बेहतर बना सकते हैं।

छैल बिहारी शर्मा 'इंद्र'
छाता, बिहार

IAS

भारत का एकमात्र सेवार्थ संस्थान
जो "न्यूनतम शुल्क पर अधिकतम गुणवत्ता" हेतु प्रतिबद्ध है

PCS

KUMAR'S IAS

KUMAR'S IAS में Fee अन्य संस्थानों की तुलना मे कम क्यों?

क्योंकि

KUMAR'S IAS की स्थापना **Kumar Sir** द्वारा **2006** में अपनी **Mother** की प्रेरणा से की गई थी, और उन्हीं के कहने पर **Kumar Sir** ने संस्थान को केवल आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग को ध्यान में रखकर संचालित किया लेकिन कुछ समय पूर्व उनकी **Death** हो जाने के कारण आज भी **Kumar Sir** उनके सपने को पूरा करने के लिए संस्थान को सेवार्थ भावना पर ही संचालित कर रहे है। इसलिए कोई भी अभ्यर्थी **KUMAR'S IAS** में आकर कम **Fee** के बारे में कोई प्रश्न न करें और ना ही अन्य संस्थान **KUMAR'S IAS** की सेवार्थ भावना पर कोई टिप्पणी करें।

उपलब्ध विषय व शुल्क

- सामान्य अध्ययन (मुख्य परीक्षा) शुल्क- ₹ **15,500**
- सामान्य अध्ययन (प्रारंभिक परीक्षा) शुल्क- ₹ **8,500**
- सामान्य अध्ययन (प्रारंभिक सह मुख्य परीक्षा) शुल्क- ₹ **20,500**
- लोक प्रशासन (मुख्य परीक्षा) शुल्क- ₹ **15,500**

नए सत्र हेतु नामांकन प्रारंभ
पहले आओ पहले पाओ के आधार पर

एक बार पुनः कम Fee में उच्चतम गुणवत्ता का उत्कृष्ट परिणाम

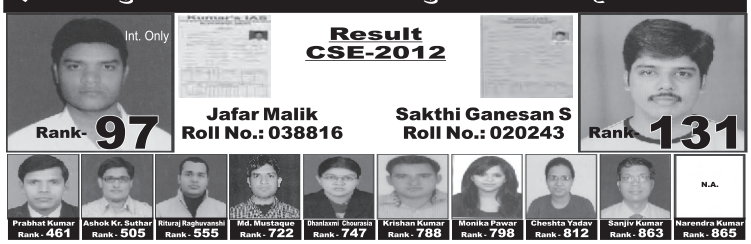

सिविल सेवा मुख्य परीक्षा-2012 में सफल अन्य अभ्यर्थी

KUMAR'S IAS

A-31/34, Basement Arya Gas Agency, Behind Post Office,
Jaina Extension Complex, Dr. Mukherjee Nagar, Delhi-09
Email : kumariasacademy@gmail.com
Website : www.kumarsias.com
011-47567779

24×7 Helpline : 0-8882388888

0-888-222-4455
0-888-222-4466
0-888-222-4477
0-888-222-4488

अभ्यर्थी ध्यान दें Admission कराने के लिए 1 Photo व Total Fee का 20% Amount अवश्य साथ लायें...

अभ्यर्थी ध्यान दें Admission कराने के लिए 1 Photo व Total Fee का 20% Amount अवश्य साथ लायें...

YH-120/2013

संपादकीय

ज्ञान वही है, जो मुक्त करे

नई सहस्राब्दी का यह प्रारंभिक कालखंड मानव समाज और उसके भविष्य के लिए शिक्षा के महत्त्व को नए सिरे से समझने की अपेक्षा करता है। भारत में तो उपनिषदों, बल्कि उससे भी प्राचीन काल से सुव्यवस्थित शिक्षा प्रणाली की लंबी परंपरा रही। हमारे प्राचीन ग्रंथों में ज्ञान के प्रतिष्ठित केंद्रों का उल्लेख है। नालंदा, तक्षशिला और विक्रमशिला के सुप्रसिद्ध विश्वविद्यलय मात्र धार्मिक शिक्षा के ही नहीं बल्कि विज्ञान, खगोल, चिकित्सा तथा दर्शन जैसे विविध क्षेत्रों में व्यावहारिक शिक्षा के लिए भी विख्यात रहे हैं। मिथिला और नाडिया की भारतीय दर्शन की न्याय शाखा के प्रमुख केंद्र के रूप में प्रतिष्ठा रही है। मध्यकाल में भी, देश में अनेक मकतब और मदरसे ऐसी शिक्षा प्रदान कर रहे थे जो किसी भी मानदंड से उत्कृष्ट ही कही जा सकती है। दिल्ली, जौनपुर और सिंध शिक्षा के महत्त्वपूर्ण केंद्र थे।

प्रख्यात विद्वान धर्मपाल (1922-2006) ने अपने लेखन में स्पष्ट किया है कि यह मानना कतई गलत होगा कि अंग्रेज़ ही भारत में संस्थागत शिक्षा प्रणाली लेकर आए और उनके आने से पहले भारत में शिक्षा की कोई व्यवस्थित प्रणाली थी ही नहीं। धर्मपाल ने बिहार और बंगाल के बारे में एडम की रिपोर्ट, मद्रास के बारे में मुनरो के रिपोर्ट और पंजाब के बारे में लीटनर के विश्लेषण का हवाला देते हुए जोरदार तरीक़े से यह तथ्य सामने रखा कि अंग्रेज़ों के आने से पहले भारत में शैक्षिक संस्थाओं का व्यापक दायरा था। इन संस्थाओं के जरिये भारत की जनसंख्या के बड़े हिस्से को विविध विषयों की शिक्षा प्रदान की जाती थी और इस शिक्षा का लाभ उठाने वालों में 'द्विजेतर' जातियों के लोगों की भी बड़ी संख्या थी। सच तो यह है कि अंग्रेज़ों ने भारत पर जो शिक्षा प्रणाली थोपी उसका उद्देश्य 'अंग्रेज़ शासकों और देश के लाखों-करोड़ों सामान्यजन के बीच मात्र दुभाषियों का एक वर्ग खड़ा करना था।'

फिलहाल, बड़ा और जरूरी सवाल शिक्षा के गहरे अर्थों से जुड़ा है। शिक्षा का उद्देश्य क्या है? हम अपने स्कूलों के जरिये कैसे इंसान तैयार करना चाहते हैं? एक शिक्षित व्यक्ति का समाज और दुनिया से कैसा संबंध होना चाहिए? ऐसा लगता है कि आधुनिक शैक्षिक प्रणाली में मुख्य जोर टेक्नोलॉजी और किताबी ज्ञान से संपन्न भद्रलोकों वाले (टेक्नोक्रेटिक-मेरिटोक्रेटिक) वैश्विक परिदृश्य का निर्माण करना मात्र है। यह प्रणाली तथाकथित शिक्षितों का ऐसा वर्ग तैयार करना चाहती है जो जिज्ञासा न करे, बताए गए को बिना सोचे-समझे स्वीकार कर ले, जूझने की बजाय समझौता कर ले। स्वाभाविक है कि ऐसे माहौल में दास मानसिकता फल-फूल रही है और आत्मिक शक्ति तथा जीवन-मूल्यों के प्रति निर्भीक प्रतिबद्धता विरल होती जा रही है। इस माहौल में अंध-अनुशासन को सराहा जाता है और प्रतिभा की सहज अभिव्यक्ति पर भृकुटियां तन जाती हैं। इवान इलिच के सटीक शब्दों में, स्कूली शिक्षा में 'तोता-रटंत को ज्ञान, अच्छे अंक बटोरने को शिक्षा और डिप्लोमा को योग्यता तथा शब्दाडंबर को विचारों की मौलिकता समझ लिया जाता है।'

यहां यह बात स्पष्ट करना जरूरी है कि उक्त विश्लेषण का उद्देश्य वर्तमान शैक्षिक प्रणाली के जरिये विज्ञान और टेक्नोलॉजी तथा अन्य क्षेत्रों में हुई भारी प्रगति की अनदेखी करना नहीं है। निश्चय ही इन क्षेत्रों में काफी तरक्की हुई है और देश को वर्तमान पारंपरिक शैक्षिक प्रणाली से निकले इंजीनियरों, डॉक्टरों, सरकारी अधिकारियों और अध्यापकों की बड़ी संख्या में जरूरत है। हमें ऐसे लोगों की आवश्यकता है जो आम जन का पूरा ध्यान रखते हुए व्यवस्था को सही तरीके और कुशलता से चला सकें। लेकिन संभवत: यह चुनौती छोटी है। बड़ी चुनौती तो ऐसी शैक्षिक प्रणाली विकसित करने की है जिसमें संवाद की गुंजाइश हो और जो विश्व के सामाजिक बदलाव में सार्थक योगदान दे सके।

गांधी, अरविंद, टैगोर, जे. कृष्णमूर्ति और पाओलो फ्रीयर जैसे विचारकों ने शिक्षा की आमूल परिवर्तनकारी क्षमता को पहचाना था। गांधीजी ने शिक्षा ग्रहण करने वाले के शरीर, मन और आत्मा के समग्र विकास पर बल दिया था। सोच का नया तरीक़ा तो यह होना चाहिए कि शिक्षा विद्यार्थी को उसकी क्षमता से अवगत करा दे। शिक्षा के जरिये उसके 'समग्र व्यक्तित्व का निरंतर विकास' हो तथा उसकी रचनात्मकता और मुक्ति-चेतना पुष्पित-पल्लवित हो। ऐसी शिक्षा विद्यार्थी को 'सवाल उठाने, शंका करने और चुनौती देने का साहस देगी। ऐसी शिक्षा विद्यार्थी को मुक्ति चेतना के प्रति सजग तो करेगी ही, बल्कि इस चेतना को व्यवहार में उतारने तथा सही परिपेक्ष्य में अपनी बौद्धिक क्षमता को कारगर तरीक़े से इस्तेमाल करने की शक्ति भी देगी।'

जैसा कि जे. कृष्णमूर्ति ने कहा है, सत्य संभवत: एक मार्गहीन विश्व है लेकिन मुक्ति की आकांक्षा हमें उस विश्व तक ले जाती है। संभवत: सत्य की तलाश और मुक्ति की तलाश एक ही सच के दो पहलू हैं और यह समझ हमें मुंडक उपनिषद के इस कालजयी उद्घोष तक ले जाती है- सा विद्या या विमुक्तये - ज्ञान वही है, जो मुक्त करे। ❑

Career Launcher News www.careerlauncher.com/civils

CL

सिविल सेवा अभ्यर्थी

CL Civil Services Notice No. 2013-14 September 2013

सिविल सेवा (प्रारम्भिक) परीक्षा में चयनित होने के लिए आवश्यक अंकों के 75% तक आप सा0 अ0-II (CSAT) में ही पा सकते हैं

हमारे कई छात्रों ने यह किया!!!

CL पंजीकरण संख्या	नाम	UPSC क्रमांक	CSAT में प्राप्त अंक	सिविल सेवा '12 के कट-ऑफ (209) के प्रतिशत के रूप में CSAT के प्राप्तांक
2317944	अंजली राजोरिया	38386	177.5	84.93
2792641	दीपक सोलंकी	00019	174.18	83.34
2793274	साकेत सिन्हा	00604	166.68	79.75
2793492	निशांत कुमार	02282	164.18	78.56
2196326	स्वाति गर्ग	08071	163.33	78.15
2792131	सुनील सिंगला	01275	161.68	77.36
2317287	राहुल कराले	00086	159.18	76.16
2316690	सुमित भाटिया	04182	158.33	75.76
2195852	साक्षी साहनी	12645	158.33	75.76
2793488	अग्निवेश	02638	157.5	75.36
2196195	राहुल कुमार	16299	157.5	75.36
2317945	सिद्धार्थ राजोरिया	37746	155.83	74.56
2196454	रवि सिंह	10829	155.83	74.56
2792518	गौरव अग्रवाल	02465	155	74.16
2317617	सौरभ भल्ला	00829	155	74.16

कक्षा कार्यक्रम में शामिल है 200 घंटो से भी अधिक की तैयारी

124+ घंटों का कक्षा प्रशिक्षण : 60+ घंटों की प्रिलिम्स टेस्ट सीरीज और विश्लेषण : 22+ मॉड्यूल टेस्ट और रीविजन

CSAT '14 के बैच की जानकारी के लिए अपने नजदीकी CL (सिविल सेवा) सेंटर से संपर्क करें

CL | Civil Services Test Prep

www.careerlauncher.com/civils

/CLRocks @careerlauncher

Delhi: Mukherjee Nagar: 41415241/6 | **Rajendra Nagar**: 42375128/9 | **Ber Sarai**: 26566616/17
Ahmedabad: 9879111881 | **Allahabad**: 3293666 | **Bhopal**: 4093447 | **Bhubaneswar**: 2542322
Chandigarh: 4000666 | **Gorakhpur**: 2342251 | **Indore**: 4244300 | **Jaipur**: 4054623
Lucknow: 4107009 | **Patna**: 2521800 | **Pune**: 32502168 | **Varanasi**: 2222915

YH-119/2013

भारत : भविष्य की शिक्षा महाशक्ति

● सुमा चिटनिस

इस वर्ष के शुरू में शिक्षा के बारे में दिल्ली में आयोजित एक सम्मेलन में मानव संसाधन विकास मंत्री श्री कपिल सिब्बल ने अपने उद्घाटन भाषण में भारत को ''भविष्य की शिक्षा महाशक्ति'' बनाने का विचार व्यक्त किया। मैं 1964 में कोठारी आयोग की नियुक्ति के समय से शिक्षा पर निरंतर नज़र रखती रही हूं। मंत्री के संबोधन को रिपोर्ट करने वाले अख़बार की सुर्खियों पर मेरी तात्कालिक और प्रथम प्रतिक्रिया नकारात्मक थी। मेरे विचार मे शिक्षा के प्रति वायदे पूरे न करने का सरकार का लंबा रिकार्ड रहा है। मुझे देश को भविष्य में शिक्षा महाशक्ति बनाने की बात पर निराशा हुई। मुझे यह आश्चर्य हुआ कि सरकार में एक महत्वपूर्ण पद पर होते हुए श्री कपिल सिब्बल ऐसा वायदा क्यों कर रहे हैं, जिसकी सरकार द्वारा पूरा किए जाने की संभावना नहीं है। किंतु मैंने मंत्री के भाषण से संबंधित ख़बर को जब विस्तार से पढ़ा तो मेरी प्रारंभिक प्रतिक्रिया निरर्थक हो गई और मुझे एक आशाजनक भरोसा होने लगा। मंत्री द्वारा वर्णित उन कार्य नीतियों ने मुझे प्रभावित किया जो उन्होंने भारत को महाशक्ति बनाने के लिए सुझाई हैं। मुझे लगता है कि यदि इन नीतियों को सफलतापूर्वक इस्तेमाल किया जाए, तो देश में शिक्षा का स्वरूप बदल सकता है और यह विकास का सशक्त और प्रभावशाली इंजन बन सकता है। वर्तमान वैश्विक अर्थव्यवस्था के उच्च प्रतियोगी वातावरण में आगे बढ़ने के लिए देश को इसकी परम आवश्यकता है।

मंत्री ने चार सूत्री कार्यक्रम प्रस्तुत किया है : पहला, 2025 तक उच्चतर शिक्षा में संबद्ध आयु समूह की भागीदारी, उसकी आबादी के 30 प्रतिशत तक बढ़ाना जो वर्तमान में 12.2 प्रतिशत है। दूसरा, सैंकड़ों नये पाठ्यक्रम शुरू करना। तीसरे, शिक्षा के वितरण के लिए आधुनिक प्रौद्योगिकियों का व्यापक इस्तेमाल, और चौथे, शिक्षा के प्रावधान में निजी क्षेत्र और कॉरपोरेट क्षेत्र को भागीदारों के रूप में शामिल करना। इस योजना की मुख्य शक्ति प्रौद्योगिकी के व्यापक इस्तेमाल के विचार में निहित है। इस विचार को प्रस्तुत करते हुए मंत्री ने निम्नांकित पांच सूत्री कार्यक्रम पेश किया है :

- सस्ते उपकरण जैसे–टेबलेट्स और मोबाइल टेलीफोन।
- क्लाउड कंप्यूटिंग का प्रसार।
- मुक्त शिक्षा, जो सूचना प्रौद्योगिकी राजमार्गों के ज़रिये दी जाएगी।
- सैंकड़ों पाठ्यक्रमों का प्रावधान ताकि विद्यार्थियों के लिए व्यापक विकल्प उपलब्ध कराए जा सकें और उन्हें अपनी पसंद के समीकरण अपनाने की आज़ादी हो। उदाहरण के लिए कोई चाहे तो संगीत और गणित को एक साथ अपना सके।
- एक संचार ढांचे का निर्माण, जो इस बात को ध्यान में रख कर डिज़ाइन किया जाए कि उसमें विद्यार्थी स्वयं कर के सीखें, प्रयोगशाला में प्रयोग और अनुसंधान कर सकें।

अंततः उन्होंने यह कहा कि 2.5 लाख गांवों को प्रारंभ में फाइबर ऑप्टिक्स से जोड़ा

जाएगा ताकि एक सशक्त सूचना राजमार्ग बनाया जा सके।

सरकार की योजना की दूसरी बड़ी ताक़त समावेशी भावना है, जिसमें मंत्री ने निजी निकायों और कॉरपोरेट क्षेत्र को सरकार के प्रयासों के भागीदार के रूप में आमंत्रित किया है। उन्होंने कहा कि ''सभी स्तरों पर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना अकेले सरकार का दायित्व नहीं है, निजी संस्थानों और कॉरपोरेट क्षेत्र को भी इसमें भागीदार बनना चाहिए और सभी को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने के विशाल कार्य में योगदान करना चाहिए।''

ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत में शिक्षा व्यवस्था प्रारंभ किए जाने के समय से ही निजी क्षेत्र की भागीदारी शिक्षा में रही है। इसके योगदान की सही पहचान नहीं की गई और उसे वह सम्मान नहीं दिया गया जो मिलना चाहिए था। इसके विपरीत निजी संस्थानों की कार्य प्रणाली पर सरकार की ओर से कड़े, अक्सर अव्यवस्थित और प्रशासनिक दृष्टि से असंगत नियमों और अपेक्षाओं के ज़रिये बोझ डाला जाता रहा। कॉरपोरेट क्षेत्र शिक्षा में अपेक्षाकृत नया भागीदार है। इसके पास बहुत कुछ देने को है। टाटा के कुछ शैक्षिक उद्यम इसका उदाहरण हैं, जैसे मुंबई में टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज और द टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च अथवा बंगलुरु में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंसेज, जैसे संस्थान इस क्षेत्र में नयी दृष्टि और नये उपायों को अपनाने की क्षमता रखते हैं। कॉरपोरेट भागीदारी शिक्षा के लिए धन प्रदान करने के अतिरिक्त शैक्षिक संस्थानों के भवन और प्रशासन प्रबंधन में नये कौशल भी प्रदान करती है। निजी क्षेत्र और कॉरपोरेट क्षेत्र, दोनों शिक्षा के लिए बहुत कुछ कर सकते है। लेकिन यह तभी संभव है जब इन क्षेत्रों को देश में शिक्षा प्रदान करने के कार्य में हिस्सेदारी के लिए मंत्री के सद्भावपूर्ण निमंत्रण पर ईमानदारी से अनुसरण किया जाए और सरकार ध्यानपूर्वक ऐसे प्रयास करे ताकि वे प्रभावकारी ढंग से अपना योगदान कर सकें।

यह स्पष्ट है कि सरकार की योजना महत्वाकांक्षी और महत्वपूर्ण है। किंतु, यह चुनौतीपूर्ण है और इसमें शामिल चुनौतियों को हमें समझने की आवश्यकता है। इस आलेख के दायरे में इन चुनौतियों की व्यापक सूची प्रस्तुत करना संभव नहीं है, लेकिन इस योजना में वर्णित चार सूत्रों में से प्रत्येक के संबंध में संक्षेप में चुनौतियों की जानकारी देना संभव है। अगले अनुच्छेदों में मैंने इसका प्रयास किया है।

प्रथम, 2025 तक उच्चतर शिक्षा में दाखिले 12 प्रतिशत से बढ़ा कर 30 प्रतिशत करना – उच्चतर शिक्षा की मांग में तेज़ी से बढ़ोतरी हुई है और इस लक्ष्य को हासिल करना कठिन नहीं है। मंत्री ने बताया है कि विकास के साथ सामंजस्य स्थापित करने के लिए उच्चतर शिक्षा प्रणाली में 800 विश्वविद्यालय और 50,000 कॉलेज जोड़े जाएंगे। इसके अतिरिक्त मुक्त विश्वविद्यालय भी होंगे। यह भी कठिन नहीं होना चाहिए। पिछले दशक में उच्चतर शिक्षा की मांग में भारी बढ़ोतरी हुई है और इतनी ही बढ़ोतरी शिक्षा में निजी उद्यमियों की भी हुई है तथा निजी निकाय अपेक्षित संख्या में संस्थानों की स्थापना प्रसन्नतापूर्वक कर लेंगे। किंतु, इस वृद्धि का प्रबंधन करना बड़ी चुनौती होगी। अनुभव से पता चलता है कि देश में उच्चतर शिक्षा संस्थानों की स्थापना और संचालन करने वाले ज्यादातर निजी निकाय मात्र सोना खनन करने वाले हैं यानी वे अपने विद्यार्थियों या देश की ज़रूरतों के प्रति बिना किसी प्रतिबद्धता के शिक्षा की मांग से केवल मुनाफ़ा कमाने के इच्छुक हैं। पहली चुनौती यह है कि ऐसे शिक्षा प्रदाताओं को दूर रखा जाए। दूसरी बड़ी चुनौती नये संस्थानों के लिए योग्य शिक्षकों और प्रशासकों को तलाश करने की है। पहले ही कॉलेजों और विश्वविद्यालय विभागों में उपयुक्त कार्मिकों के अभाव की वज़ह से अनेक पद खाली पड़े हैं।

सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि इस चुनौती से निपटना अत्यंत जटिल कार्य है। बाज़ार की ज़रूरतों में बदलावों से अर्थव्यवस्था में परिवर्तन होते हैं और उनका पूर्वानुमान लगाना तथा उन पर निगरानी रखना कठिन है। इसके अतिरिक्त विकसित देशों में ज्ञान के क्षेत्र में तेज़ी से विकास होने के कारण बाज़ार में नई प्रौद्योगिकियों का प्रवाह भी तेज़ी से होता है– जैसा कि सूचना प्रौद्योगिकी, संचार, चिकित्सा या इंजीनियरी के क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वैश्वीकरण के कारण ये प्रौद्योगिकियां तेज़ी से हमारे बाज़ारों में प्रवेश करती हैं। शिक्षा प्रदाता देश अभी तक उस गति से पाठ्यक्रम विकसित नहीं कर पाए हैं, जो देश में तेज़ी से प्रवेश कर रही नई प्रौद्योगिकियों के प्रवेश के लिए अपेक्षित है।

किंतु, इससे भी बड़ी और अधिक कठिन चुनौती शिक्षा को बाज़ार की ज़रूरतों के लिए तैयार करने और उसकी गुणवत्ता में सुधार लाने की है। वर्तमान में तक़नीकी स्ट्रीम से 70 प्रतिशत स्नातक और सामान्य स्ट्रीम से 85 प्रतिशत विद्यार्थी या तो बेरोज़गार हैं या फिर अर्द्ध रोज़गार में हैं। इसके साथ ही उद्योग, सरकार और रोज़गार के अन्य क्षेत्रों में उचित योग्यता रखने वाले कार्मिकों के अभाव के कारण अनेक पद खाली पड़े हैं। इस दुखद और विडंबनापूर्ण स्थिति के बारे में सामान्य स्पष्टीकरण यह है कि शैक्षिक संस्थान जिस तरह के स्नातक पैदा करते हैं, वे बाज़ार की ज़रूरतें पूरी नहीं कर पाते। देश में उच्चतर शिक्षा सुविधाओं का विस्तार करते समय इस समस्या का ध्यानपूर्वक समाधान करना होगा।

सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि इस चुनौती से निपटना अत्यंत जटिल कार्य है। बाज़ार की ज़रूरतों में बदलावों से अर्थव्यवस्था में परिवर्तन होते हैं और उनका पूर्वानुमान लगाना तथा उन पर निगरानी रखना कठिन है। इसके अतिरिक्त विकसित देशों में ज्ञान के क्षेत्र में तेज़ी से विकास होने के कारण बाज़ार में नई प्रौद्योगिकियों का प्रवाह भी तेज़ी से होता है– जैसा कि सूचना प्रौद्योगिकी, संचार, चिकित्सा या इंजीनियरी के क्षेत्रों में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वैश्वीकरण के कारण ये प्रौद्योगिकियां तेज़ी से हमारे बाज़ारों में प्रवेश करती हैं। शिक्षा प्रदाता देश अभी तक उस गति से पाठ्यक्रम विकसित नहीं कर पाए हैं, जो देश में तेज़ी से प्रवेश कर रही नई प्रौद्योगिकियों के प्रवेश के लिए अपेक्षित है। इस कमी पर काबू पाना एक चुनौती है।

अंततः, यह जानना अत्यंत महत्वपूर्ण है कि शिक्षित व्यक्तियों की बेरोज़गारी और अर्द्ध-रोज़गारी के लिए यह स्पष्टीकरण देना पर्याप्त नहीं है कि स्नातकों की योग्यताओं और बाज़ार की ज़रूरतों के बीच भारी अंतर है। स्नातकों को अक्सर उनकी शिक्षा की गुणवत्ता की वजह से नामंजूर कर दिया जाता

है। आमतौर पर यह माना जाता है कि देश में उच्चतर शिक्षा संस्थानों में बढ़ोतरी हुई है लेकिन उच्चतर शिक्षा की समग्र गुणवत्ता में कमी आई है। संज्ञानात्मक कौशल और स्वतंत्र रूप से एवं रचनात्मक दृष्टि से सोचने की योग्यता का पर्याप्त विकास नहीं हुआ है। आलोचनात्मक विचारों का जवाब देने की क्षमता भी विकसित नहीं हुई है। परिणामस्वरूप डिग्रियां और डिप्लोमा अक्सर महत्वहीन हो जाते हैं। चूंकि हमें वैश्विक समाज में प्रतिस्पर्धा करनी है, अत: यह जरूरी है कि हमारे संस्थानों का स्तर अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि से प्रतिस्पर्धा करने योग्य हो। आईआईटी और आईआईएम जैसे हमारे सर्वोत्कृष्ट संस्थान भी विश्व स्तर के नहीं हैं। भारत के राष्ट्रपति ने भी इस वर्ष जुलाई में एक दीक्षांत समारोह में इस बात पर चिंता प्रकट की थी कि भारत का एक भी विश्वविद्यालय हाल में जारी 200 श्रेष्ठ वैश्विक विश्वविद्यालयों की रैंकिंग सूची में शामिल नहीं है। चुनौती यह पता लगाने की है कि शिक्षा के समग्र स्तर में इतनी तेज़ी से गिरावट क्यों आ रही है और उसे कैसे दुरुस्त किया जा सकता है। जब तक यह नहीं होगा तब तक दाखिलों में वृद्धि और संस्थानों में वृद्धि से कोई लाभ होने वाला नहीं है।

अब मैं मंत्री द्वारा सुझाए गए दूसरे सूत्र पर आती हूं। उन्होंने 'सैकड़ों नये पाठ्यक्रमों' की बात की है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इसमें चुनौती यह सुनिश्चित करने की होगी कि नये पाठ्यक्रम बाज़ार की ज़रूरतों के अनुरूप हों और वे गुणवत्ता की दृष्टि से उत्तम हों। बाज़ार की ज़रूरतों के अनुरूप शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए यह अनिवार्य होगा कि एक ऐसी व्यवस्था कायम की जाए जिससे शिक्षा संस्थानों को इन ज़रूरतों से अवगत कराया जा सके। विद्यार्थी इस स्थिति में होने चाहिए कि अपने कॅरियर की योजना बनाते समय वे बाज़ार की ज़रूरतों के मुताबिक सोच समझ कर पाठ्यक्रम विकल्पों का चयन कर सकें और उन्हें यह परामर्श दिया जा सके कि बाज़ार की ज़रूरतों को वे किस प्रकार स्व-रोज़गार सहित रोज़गार के अन्य अवसरों में तब्दील कर सकते हैं। चूंकि, शैक्षिक संस्थान मांग आधारित होंगे इसलिए विद्यार्थियों को बाज़ार की ज़रूरतों के बारे में जानकारी देने से परोक्ष रूप से संस्थागत विकास को सही दिशा में निर्देशित करने में भी मदद मिलेगी। शिक्षा के स्तर में सुधार लाना अधिक कठिन कार्य है। इसके लिए ध्यान पूर्वक नीतियां तैयार करनी होंगी।

अंतत: उच्चतर शिक्षा को बाज़ार की ज़रूरतों के अनुरूप बनाना और गुणवत्ता में सुधार लाना इस चुनौती का हिस्सा मात्र हैं। उच्चतर शिक्षा संस्थानों, विशेषकर विश्वविद्यालयों को आविष्कारों के वाहकों, नये ज्ञान, नये कौशलों और नई प्रौद्योगिकियों के लिए विचारों के सृजन और अंतरक्रिया केंद्रों के रूप में काम करना होगा। हमारे उच्चतर शिक्षा संस्थान इस कसौटी पर खरे उतरते नज़र नहीं आते। उन्हें इन ज़रूरतों को पूरा करने में सक्षम बनाना 'सैकड़ों पाठ्यक्रमों' की कार्यसूची का हिस्सा होना चाहिए।

मंत्री की योजना का तीसरा सूत्र शैक्षिक वितरण के लिए अत्याधुनिक प्रौद्योगिकियों के इस्तेमाल से संबद्ध है। प्रौद्योगिकियां उपलब्ध हैं और हम उनका इस्तेमाल करने में सक्षम हैं। किंतु, प्रस्तावित पैमाने पर कार्यनीतियों को लागू करने के लिए अपेक्षित ढांचे का निर्माण, उसका रखरखाव और प्रस्तावित पाठ्यक्रमों का संचालन एक बड़ी चुनौती है। इसके अलावा हमें बताया गया है कि 12वीं पंचवर्षीय योजना में उच्चतर शिक्षा के लिए धन 11वीं योजना की तुलना में पांच गुणा अधिक होगा। किंतु, क्या यह प्रौद्योगिकी के इस्तेमाल की महत्त्वाकांक्षी योजनाओं के लिए पर्याप्त होगा?

चौथा सूत्र मंत्री द्वारा निजी और कारपोरेट क्षेत्रों को सरकार के भागीदार बनाने से संबंधित है। ऐसी भागीदारी, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं और ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है, देश में उच्चतर शिक्षा के लिए सर्वोत्कृष्ट स्थिति होगी। किंतु, इसे कार्यरूप देने के लिए सरकार को एकजुट होकर प्रयास करना होगा। मुझे निजी तौर पर चलाए जाने वाले कॉलेजों के संचालन को क़रीब से देखने का अवसर मिला है और मैं जानता हूं कि किस तरह उन्हें सरकार और यहां तक कि यूजीसी की अपेक्षाएं पूरी करने के लिए परेशानियों का सामना करना पड़ता है, जो अक्सर यांत्रिक और कड़ी होती हैं और प्रयासों को हतोत्साहित करने वाली होती हैं। मैंने यह भी देखा है कि उन लोगों के लिए संस्थान शुरू करना कितना मुश्किल है जिनके राजनीतिक या प्रभावशाली लोगों से कोई संबंध नहीं हैं। इतना ही नहीं, एक ही काम के लिए सरकारी दफ्तरों के बार-बार चक्कर लगाने और कार्य पूरा होने में देरी की समस्या का सामना करने और इन कार्यालयों में विभिन्न स्तरों पर लोगों की मुट्ठी गर्म किए बिना किसी कार्य को पूरा कराना लगभग असंभव होता है।

मैंने केवल कुछ चुनौतियों की पहचान की है। इनके अलावा भी बहुत-सी चुनौतियां हैं। किंतु, राष्ट्र के लिए यह परम आवश्यक है कि इस योजना पर अमल किया जाए और सरकार को इसे अवश्य अमली जामा पहनाना चाहिए। इस बीच, मैं एक अन्य बुनियादी सवाल पर विचार करना चाहता हूं, जो देश में स्कूली शिक्षा की दयनीय स्थिति से संबद्ध है और इस समस्या का समाधान मंत्री की योजना में शामिल नहीं किया गया है। चीन के कार्मिकों की तुलना में देखें तो पता चलता है कि हमारे कार्मिकों में शिक्षा का स्तर कितना दयनीय है देखें तालिका-1।

आधुनिक और आधुनिक बन रही अर्थव्यवस्थाओं के लिए यह ज़रूरी है कि उनके कार्मिक न्यूनतम प्राथमिक शिक्षा प्राप्त हों। हालांकि इसमें माध्यमिक स्कूल शिक्षा को वरीयता दी जाती है। उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि हमारी स्थिति इस बारे में अत्यंत दयनीय है। चीन के कार्मिक इस श्रेणी में 79 प्रतिशत आते हैं जबकि उसकी तुलना में भारतीय कार्मिक मात्र 48 प्रतिशत हैं। निरक्षरता की दृष्टि देखें तो भारतीय कार्मिक 47 प्रतिशत हैं जबकि चीन के 18 प्रतिशत कार्मिक निरक्षर हैं। हमें अपने देश में स्कूली शिक्षा में तत्काल सुधार करने की आवश्यकता है।

मंत्री जी ने शिक्षा के लिए संचार राजमार्ग बनाने हेतु 2.5 लाख गांवों की बात की है, तो स्कूली शिक्षा में सुधार स्वाभाविक रूप से उनकी कार्यसूची में शामिल होगा। किंतु योजना में चूंकि स्कूली शिक्षा का अलग से उल्लेख नहीं किया गया है तो यह आशंका होती है

तालिका-1

	निरक्षर	प्राथमिक	माध्यमिक	माध्यमिक से ऊपर
भारत	47 प्रतिशत	32 प्रतिशत	16 प्रतिशत	5.5 प्रतिशत
चीन	18 प्रतिशत	34 प्रतिशत	45 प्रतिशत	3 प्रतिशत

कि उच्चतर शिक्षा को प्राथमिकता देते समय कभी इसे छोड़ दिया गया हो। प्रश्न यह है कि स्कूली शिक्षा में सुधार क्यों अनिवार्य है, पहला इसलिए कि स्कूली शिक्षा प्राप्त कार्मिकों की तत्काल आवश्यकता है और दूसरा इसलिए कि स्कूली शिक्षा उच्चतर शिक्षा का आधार होती है और उच्चतर शिक्षा में दाखिले बढ़ाने से पहले हमें उसे समुचित स्वरूप अवश्य प्रदान करना होगा। स्कूली शिक्षा को भी उतना ही महत्व देना होगा जितना मंत्री की योजना में उच्चतर शिक्षा के लिए दाखिले बढ़ाने पर दिया गया है। इसके अभाव में शिक्षा का पूर्ण पिरामिड खड़ा नहीं किया जा सकता क्योंकि स्कूली शिक्षा उसका आधार है।

संभवत: यह उचित होगा कि मंत्री द्वारा प्रस्तावित योजना पर इस ढंग से पुनर्विचार किया जाए कि इसमें उच्चतर शिक्षा में दाखिले बढ़ाने पर ध्यान केंद्रित करने से पहले स्कूली शिक्षा को सुदृढ़ बनाने और उच्चतर शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार लाने तथा उसे तेज़ी से बाज़ार की ज़रूरतों के अनुकूल बनाने पर ध्यान केंद्रित किया जाए। उच्चतर शिक्षा में दाखिले तो बढ़ेंगे ही क्योंकि निजी उद्यमों के ज़रिये कॉलेजों की संख्या में प्रचुर वृद्धि हुई है। सरकार को इन गतिविधियों में निवेश करने नहीं है। उसे केवल इस विकास के प्रबंधन में निवेश करने की आवश्यकता है और यह सुनिश्चित करने की आवश्यकता है कि उच्चतर शिक्षा का प्रबंधन भ्रष्टाचार से मुक्त रहे और उसमें प्रचलित अनुचित तौर तरीक़ों को दूर किया जा सके। सरकारी कार्यालयों को निजी क्षेत्र और कार्पोरेट क्षेत्र के लिए सभी प्रकार की सहायता उपलब्ध करानी चाहिए ताकि वे बेहतर भागीदार के रूप में काम कर सकें। मंत्री द्वारा प्रस्तुत योजना में प्रस्तावित संशोधन, विशेषकर स्कूली शिक्षा को इसमें शामिल करने का सुझाव देते हुए मैंने देश में स्कूल शिक्षा के बारे में कुछ बुनियादी तथ्य प्रस्तुत किए हैं।

संविधान के अनुच्छेद-45 के ज़रिये 1951 में यह वायदा किया गया था कि 'राज्य इस संविधान के लागू होने की तारीख से 10 वर्ष के भीतर 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों के लिए निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था करने का प्रयास करेगा'। नये प्रयासों, वायदों और कानूनी उपायों के बावजूद एक के बाद दशकों तक और यहां तक कि पिछली सदी के अंत तक इस वायदे को पूरा नहीं किया जा सका। परिणामस्वरूप शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 में पारित किया गया जिसमें 14 वर्ष तक की आयु के बच्चों के लिए निशुल्क और अनिवार्य शिक्षा को कानूनी अधिकार बनाया गया। इसके बावजूद इस आयु समूह की 95 प्रतिशत आबादी ही आज स्कूल में है। हालांकि 95 प्रतिशत आबादी दाखिला लेती है लेकिन केवल 73 प्रतिशत बच्चे स्कूल जाते हैं। केवल 40 प्रतिशत मिडिल स्कूल और 20 प्रतिशत से भी कम सेकेंडरी स्कूल स्तर की शिक्षा पूरी कर पाते हैं।

शिक्षा के प्रति संवैधानिक वचनबद्धता के बाद सरकार स्कूलों को वित्तीय सहायता प्रदान करती है। देश में केवल 80 प्रतिशत स्कूल यह सहायता प्राप्त करते हैं शेष 20 प्रतिशत विद्यालय स्वेच्छा से यह सहायता प्राप्त नहीं करते। सरकार से सहायता प्राप्त स्कूल निम्न और मध्यम आय वाली आबादी को सेवा प्रदान करते हैं। वे देश में 73 प्रतिशत बच्चों के लिए स्कूल उपलब्ध कराते हैं और स्कूली शिक्षा में मुख्य भूमिका अदा करते हैं। कुछ सहायता प्राप्त स्कूल कामचलाऊ हैं यहां तक कि अच्छे हैं, लेकिन उनमें से ज्यादातर विशेषकर ग्रामीण आबादी और शहरी निर्धनों को सेवा प्रदान करने वाले स्कूलों को सुविधाओं की कमी का सामना करना पड़ता है। इनके बारे में पहली बार 1999 में एक जांच रिपोर्ट में ब्यौरा दिया गया था। इस रिपोर्ट के अनुसार इन स्कूलों में मानचित्रों, ब्लैकबोर्डों, शौचालयों, खेल मैदानों, पेयजल और ऐसी ही अन्य सुविधाओं का अभाव था। जिन स्कूलों का दौरा किया गया उनमें केवल 53 प्रतिशत शिक्षक पढ़ा रहे थे। अनेक शिक्षक क्लास रूम से बाहर एक-दूसरे से बातें करते पाए गए, जो अपनी कक्षाओं के बाहर खड़े थे या अपनी कक्षा से इतर किसी अन्य गतिविधि में लगे थे। एक प्रतिष्ठित गैर-सरकारी संगठन 'प्रथमा' द्वारा वार्षिक रूप में प्रकाशित रिपोर्टों से पता चलता है कि इस स्थिति में कुछ सुधार हुआ है लेकिन इसे पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। यह संगठन पिछले एक दशक से सहायता प्राप्त स्कूलों की कार्यप्रणाली पर व्यवस्थित ढंग से निगरानी रख रहा है। इस आलेख में स्कूलों में सुविधाओं के अभाव से संबंधित आंकड़ों और ब्यौरों को शामिल करना संभव नहीं है, लेकिन 2010 के लिए प्रथमा की रिपोर्ट में वर्णित कुछ तथ्य स्थिति का अनुमान लगाने के लिए पर्याप्त हैं।

राष्ट्रीय स्तर पर गणित के सवाल हल करने में योग्यता का अभाव–सभी कक्षाओं में देखा गया है। हर दृष्टि से स्तर अपर्याप्त पाया गया। उदाहरण के लिए कक्षा 5 के बच्चे कक्षा 2 के लिए निर्धारित पुस्तकों को नहीं पढ़ सकते। 5 में से एक बच्चा भी 11 से 99 तक के अंकों की पहचान नहीं कर सकता। कुल मिलाकर 5 वर्ष की स्कूलिंग के बाद 50 प्रतिशत बच्चे मात्र कक्षा 2 का स्तर हासिल कर पाते हैं। माध्यमिक स्कूल विद्यार्थियों की योग्यता का मूल्यांकन करने के लिए आयोजित किए गए पीआईएसए-पीसा परीक्षणों से प्राप्त अद्यतन आंकड़ों में भारत को 73 देशों, जिनमें यह परीक्षण कराए गए थे, की सूची में 71वां स्थान दिया गया है। अनेक तरह के अन्य आंकड़ों से भी पता चलता है कि इन स्कूलों में विद्यार्थियों को कितने घटिया तरीक़े से पढ़ाया जाता है। ऐसी स्थिति में क्या देश स्कूली प्रणाली में सुधार करने से पहले उच्चतर शिक्षा में अधिक निवेश कर पाएगा। स्कूली शिक्षा जो समूची शिक्षा की रीढ़ है, उसे समुचित आकार दिए बिना क्या उच्चतर शिक्षा में निवेश उचित और संभव है? क्या यह बुद्धिमतापूर्ण नहीं होगा कि उच्चतर शिक्षा की गुणवत्ता सुधारने और उसे देश की ज़रूरतों के लिए अधिक कारगर बनाने हेतु स्कूली शिक्षा पर ध्यान केंद्रित किया जाए? क्या हमें भविष्य में भारत को शिक्षा के क्षेत्र में महाशक्ति बनाने की बात करने से पहले मंत्री द्वारा सुझाई गई है योजना में वर्णित उत्कृष्ट कार्य नीतियों का इस्तेमाल शिक्षा को बेहतर बनाने के लिए नहीं करना चाहिए ताकि वैश्विक अर्थव्यवस्था में राष्ट्र को आगे बढ़ाया जा सके। ❑

(लेखिका जानी-मानी समाज शास्त्री हैं एवं 1990 और 1996 के बीच एस एन डी टी महिला विश्वविद्यालय की कुलपति रही हैं। उससे पहले वे टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ सोशल साइंसेज में अनुसंधान एकांश में प्रोफेसर एवं अध्यक्ष रहीं। सेवा निवृत्ति से पहले सुमा चिटनिस जे एन टाटा एंडोमेंट में भारत में उच्चतर शिक्षा से संबंधित निदेशक थीं।

ई-मेल : sumachitnis@gmail.com)

उच्च शिक्षा में भारतीय भाषाएं

● तेजस्विनी निरंजना

भारतीय भाषाओं में किशोरावस्था तक पढ़ाई करने वाले गैर-महानगरीय छात्र जब विश्वविद्यालय में आते हैं तो उनका पाठयक्रम अंग्रेज़ी में होता है। इन परिस्थितियों में छात्र कक्षाओं में खुद को काफी असहज महसूस करते हैं

कतिपय ऐतिहासिक अपवादों को छोड़ दें तो भारत की सदियों पुरानी अधिकांश भाषाएं खासकर विज्ञान के अध्यापन और शोध के लिए पर्याप्त शब्दकोश का सृजन नहीं कर पायी हैं। प्राकृतिक विज्ञान की शिक्षा एक अलग संवर्ग के तहत आती है, क्योंकि इसका झुकाव एक वैश्विक वैज्ञानिक शब्दावली की तरफ देखा गया है। औपनिवेशिक समाज द्वारा पोषित एक विषम भाषाई विकास एक नयी परिस्थिति को जन्म देती है और इसके साथ-साथ भाषा की रचनात्मकता और सौंदर्य पर भी अंग्रेज़ी में आधुनिक ज्ञान के निस्तारण का शिक्षण नयी परिस्थिति को जन्म देता है। इस आलेख में भारतीय भाषाओं में बौद्धिक संसाधनों के सशक्तीकरण के जरिये ज्ञान के सृजन में ऐतिहासिक असंतुलन दूर करने का मुद्दा उठाया गया है।

भारत में विश्वविद्यालयी प्रणाली ने तृतीय महाकल्पीय शिक्षा के रूप में अंग्रेज़ी को माध्यम बनाया है। ऐसा करते वक़्त हमारे राष्ट्रीय कुलीनों ने यह सुनिश्चित किया कि सामाजिक और राजनीतिक शक्तियां कुछ ऐतिहासिक सुविधा प्राप्त समूहों के अधीन ही रहें। उच्च शिक्षा ऐसा प्रक्षेत्र रहा जहां इस

ऐतिहासिक सुविधाभोगी वर्ग ने आधुनिक काल में वैधता प्राप्त की। जब तक विश्वविद्यालयी कामकाज में कुछ सामाजिक रूप से सुविधा प्राप्त पृष्ठभूमि के लोगों का प्रवेश नहीं हुआ, तब तक अंग्रेज़ी सिविल सेवा और नौकरियों में प्रवेश की माध्यम भाषा बनी रही। हालांकि सामाजिक आंदोलनों और संवैधानिक आदेशों, जो कठिनाई से ही लागू हो पाए, उसके बावजूद पिछले दो-तीन दशकों में उच्च शिक्षा की ओर एक बड़ी जनसंख्या को जोड़ने का काम संभव हुआ है। कक्षाओं की सामाजिक संरचनाओं में बदलाव के फलस्वरूप शिक्षाविदों, नीति निर्माताओं और सभी संबद्ध लोगों के समक्ष एक बड़ी चुनौती सामने है कि विश्वविद्यालयों में दिख रही बड़ी सामाजिक खाई को कैसे पाटा जाए।

संभावित आकलनों के अनुसार आठ से नौ मिलियन छात्र (सभी नामांकित छात्रों के 40 फीसदी) प्रतिवर्ष भारत के गैर-महानगरों के होते हैं, जो इस प्रणाली में प्रवेश पाते हैं। इनमें से अधिकांश अंग्रेज़ी में प्रवीण नहीं होते और यही अक्षमता उन्हें सामाजिक गतिशीलता से वंचित भी करती है। पिछले कई सालों से भारत में लोक प्राथमिक शिक्षा भाषाई शिक्षण माध्यम से जुड़ी है। लेकिन उच्च शिक्षा में प्रक्षेत्रीय वैश्वीकरण ने शिक्षण और शोध में अंग्रेज़ी के वर्चस्व को ही स्थापित किया है। इन सबके बावजूद हम ऐसी स्थिति में हैं, जहां महानगरीय केंद्रों के बाहर स्थानीय भाषाओं के अनुरूप शिक्षण की आवश्यकता महसूस की जा रही है, हालांकि शिक्षण संसाधनों की जटिलताएं अभी भी दिखायी देती हैं। वाणिज्य और संचार में अभी भी व्यापक रूप से अंग्रेज़ी भाषा का प्रसार देखा जाता है, लेकिन प्रक्षेत्रीय शिक्षण की वास्तविक भाषा के रूप में अंग्रेज़ी का प्रसार अब कम होता दिख रहा है। ऐसा शायद इसलिए क्योंकि मुख्यधारा के स्नातकोत्तर शिक्षण में अंग्रेज़ी माध्यम से आए छात्रों की संख्या कम हो रही है या फिर वैश्विक माहौल में नये रोज़गार अवसरों के

सृजन से वे स्नातकोत्तर जैसी पारंपरिक शिक्षण व्यवस्था से खुद को किनारा कर रहे हैं। जाहिर है संबंधित आयु वर्ग के 11 फीसदी छात्र ही स्नातकोत्तर की पढ़ाई में आ रहे हैं और उनमें से भी 17 फीसदी ही स्नातकोत्तर की पढ़ाई पूरी करते हैं। इन कारकों का विश्वविद्यालयों में घटती संख्या में योगदान है (भारत में सकल दाखिला अनुपात किसी भी तुलनीय समाज का आधा है) और यह भारतीय शिक्षा में भीषण भाषाई विभाजन को इंगित करता है। यह गैर-महानगरीय छात्रों के रोज़गार, आर्थिक और सामाजिक गतिशीलता में बाधा का बड़ा कारण भी है।

भारतीय भाषाओं में किशोरावस्था तक पढ़ाई करने वाले गैर-महानगरीय छात्र जब विश्वविद्यालय में आते हैं तो उनका पाठयक्रम अंग्रेज़ी में होता है। इन परिस्थितियों में छात्र कक्षाओं में खुद को काफी असहज महसूस करते हैं। ऐसा नहीं है कि स्वातंत्र्योतर भारत में ऐसी परिस्थितियां नहीं थी। सन् 1960 से शुरुआत करते हुए भारत सरकार ने अंग्रेज़ी भाषा में दक्षता बढ़ाने क लिए अंग्रेज़ी के चार क्षेत्रीय संस्थान (आरआईई) की स्थापना की और मानक पाठ्यपुस्तकों के भारतीय भाषाओं में अनुवाद को बढ़ावा दिया। इसके लिए सन 2007 में राष्ट्रीय अनुवाद मिशन की स्थापना की गई। इन नीतियों के बावजूद असफलता की दर और कमज़ोर रोज़गार सृजन उच्च शिक्षा प्रणाली की कमज़ोर कड़ी बने रहे। अंग्रेज़ी में दक्षता बढ़ाने का तब कोई प्रभाव ही नहीं पड़ा, क्योंकि समसामयिक आवश्यकताओं के अनुरूप पाठयक्रम तैयार करने पर ध्यान ही नहीं दिया गया। इसी तरह बड़ी मात्रा में भारतीय भाषाओं में अनुवाद का भी कोई लाभ हासिल नहीं हो पाया, क्योंकि उच्च शिक्षा के लिए तैयार की गई सामग्री की प्रासंगिकता ही नहीं बची थी।

इस समस्या के समाधान के लिए अनुवाद का बड़ा काम मेरी नज़र में अपर्याप्त है। ऐसा इसलिए क्योंकि अनुवाद को अधिकांश तौर पर मुख्य रूप से पश्चिमी भाषा खासकर अंग्रेज़ी के एकांगी प्रवाह के रूप में ही देखा जाता है। जब हम एकांगी अनुवाद की विधि अपनाते हैं, तो इसके साथ हम विदेशी अवधारणाओं को भी उसी अनुरूप और उसी शब्दकोष के साथ भारतीय भाषाओं में अपनाने को मज़बूर होते हैं। इसकी बजाय हमें आधुनिक भारतीय भाषाओं के समृद्ध संसाधनों को इकट्ठा करके एक नये विश्लेषणात्मक रूप तैयार करना चाहिए। जहां ज़रूरत हो, हमें अपने परिप्रेक्ष्य और सामाजिक संदर्भों के अनुरूप नये संसाधनों का सृजन करना भी ज़रूरी है।

वर्ष 2008 में बंगलुरु में कई संस्थानों के विशेषज्ञों न बदहाल उच्च शिक्षा के परिदृश्य पर विचार करने और उसमें बदलाव लाने के लिए बैठक की थी। उनमें से कुछ ने प्राथमिक सुझावों के तौर पर इसकी संरचना और अध्ययन प्रक्रिया में बदलाव की पहल की थी। यह महसूस किया गया कि मौजूदा संसाधनों के सुरुचिपूर्ण सर्वेक्षण से भविष्य की योजना तैयार करने का मार्ग प्रशस्त हो सकता है और भारतीय भाषाओं में गुणवत्तापूर्ण शिक्षण और शोध सामग्री की समस्या का समाधान हो सकता है। इनका वर्णन करते हुए दो ऐसे अध्ययनों जो कन्नड़ और हिंदी से संबंधित हैं, नीचे प्रस्तुत हैं :

कार्यक्षेत्रीय अध्ययन

बंगलुरु के संस्कृति और समाज अध्ययन केंद्र ने सन 2009 में कन्नड़ विश्वविद्यालय के अनुवाद अध्ययन विभाग के साथ कार्यक्षेत्रीय अध्ययन पर उच्च शिक्षा उन्नयन और शोध अनुप्रयोग (एचइआइआरए) कार्यक्रम किया था। अध्ययन का उद्देश्य कन्नड़ में उच्च शिक्षा हेतु उपलब्ध संसाधनों का अध्ययन और उच्च शिक्षा में भाषाई विभाजन से संबंधित पूर्व नीतियों का कर्नाटक के संदर्भ में अध्ययन करना था। पाया गया कि उच्च शिक्षा में पढ़ाई जाने वाली 96 फीसदी स्थानीय भाषा की पुस्तकें अनुवाद हैं और चार फीसदी ही मूल संसाधन हैं। रिपोर्ट में उच्च शिक्षा में स्थानीय संदर्भ सामग्री की घोर किल्लत भी पाई गई।

कन्नड़ अध्ययन से कुछ रोचक तथ्य सामने आए। सन 1980 से कर्नाटक के लगभग सभी विश्वविद्यालयों में परीक्षा का व्यापक माध्यम कन्नड़ ही था, जबकि अध्यापन का माध्यम अंग्रेज़ी था। मानविकी और समाज विज्ञान में अब भी अध्यापन ज्यादातर कन्नड़ में ही होता है। अधिकांश छात्र अपने शोध प्रपत्र लिखने में कन्नड़ भाषा का ही प्रयोग करते हैं। इस तरह कन्नड़ में उपलब्ध संसाधनों के साथ उच्च शिक्षा में आने वाले छात्रों की संख्या बढ़ रही है। इनकी संख्या में इस भाषा में गुणवत्तापूर्ण सामग्री उस अनुपात में उपलब्ध नहीं है।

हेरा ने नयी दिल्ली में कुछ विद्वानों के समूह के साथ भी काम किया, जो स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर तीन मुख्य विभाग– इतिहास, राजनीति विज्ञान और समाज विज्ञान में पाठयक्रम संसाधनों की गुणवत्ता की समीक्षा कर रहे थे। उत्तर भारत के पांच राज्यों में छह प्रमुख विश्वविद्यालय हैं, पटना विश्वविद्यालय; बिहार, इलाहाबाद विश्वविद्यालय और बनारस हिंदू विश्वविद्यालय; वाराणसी; उत्तर प्रदेश, बरकतुल्ला विश्वविद्यालय; भोपाल; मध्य प्रदेश, महर्षि दयानंद विश्वविद्यालय; रोहतक; हरियाणा और राजस्थान विश्वविद्यालय; जयपुर; राजस्थान। इन विश्वविद्यालयों की पाठ्यपुस्तकें पाठयक्रम सामग्री, शैक्षणिक गुणवत्ता और संबंधित शिक्षण स्तर पर उनकी महत्ता और उत्पादन गुणवत्ता के आधार पर परखी गईं। हिंदी भाषा 151 विश्वविद्यालयों और डीम्ड विश्वविद्यालयों में 10 हिंदी भाषी राज्यों में पढ़ायी जाती है, इसलिए भारतीय भाषाओं के मूल्यांकन में उच्च शिक्षा में यह सर्वोच्च स्थान पर रही। कार्यक्षेत्र अध्ययन की अंतर्दृष्टि यह समझने में मदद करती है कि छात्रों के पास चाहे कोई भी पाठयपुस्तक सामग्री हो, कुछ ही को सर्वश्रेष्ठ सूची में रखा जा सका, बड़ी संख्या में छात्रों को प्रतिस्पर्धी और ज्यादातर छात्रों को कम ज्ञान की सूची में रखा गया। इसका मानक 100 पर आधारित था।

कम ज्ञान की सूची वाले संवर्ग में रखे गए छात्रों की वर्गीकृत सामग्रियों में अपूर्णता, विषय का अंतराल, तथ्यात्मक अशुद्धि, पक्षपाती विवरण, व्याख्यायों का अत्यंत सरलीकरण, अप्रचलित व्याख्या, अलग-अलग स्तरों (बीए, एमए) पर असंतोषप्रद वर्गीकरण, उदाहरणों का अभाव, आगे की पढ़ाई के लिए दिशानिर्देश का अभाव, ग्रंथ सूची, ख़राब भाषा आदि पाए गए। सबसे गंभीर चीज यह पाई गई कि सामग्रियों में बौद्धिकता का अभाव था। हिंदी में उपलब्ध सामग्री का उदाहरण बताने में असमर्थता भी अन्य कारक रहा।

हिंदी पाठयपुस्तकों के अध्ययन में ये सुझाव भी चेतावनियों के साथ आए कि इसमें उच्च स्तरीय बौद्धिक और वित्तीय निवेश की ज़रूरत होगी। ये हैं, स्नातकोत्तर स्तर पर पाठयक्रम विशेषज्ञ रीडरों की शृंखला की जरूरत होगी, जिनमें वर्तमान, नये अनूदित और

नवलिखित सामग्रियों का मिश्रण हो, इसी तरह स्नातक के छात्रों के लिए प्रमुख विषयों पर लघु प्रबंधों के साथ विस्तृत संदर्भ ग्रंथ दिये जाएं, नीतिगत तरीक़े से विषय विशेष में पैदा हुई खाई भरने की कवायद हो जो नये अनुवाद या मूल पाठय के बीच की खाई उपलब्ध सामग्री में भरने का काम करें, विषयों में निर्देशित प्रेरक परिचय हो ताकि कक्षा 12 के एनसीईआरटी के पाठ्यक्रम को गतिशील बना सकें और छात्र गाइड पुस्तकों पर निर्भर न रहें और यह लगातार सुनिश्चित किया जाए कि अच्छी पाठयसामग्री अद्यतन रूप में उपलब्ध होते रहें, उनमें से अप्रचलित सामग्री हटायी जाएं और नये परिप्रेक्ष्य जोड़े जाते रहें। विभिन्न भाषाई अध्ययनों से यह पाया गया है कि इन सुझावों को सभी भारतीय भाषाओं में सामान्य रूप से लागू किया जा सकता है।

हिंदी और कन्नड़ भाषाओं के अध्ययन का एक खास तथ्य ये रहा कि दोनों ही समाज विज्ञान पर फोकस किए गए थे। सन 2008 की बैठक के विश्लेषणों को साझा करते हुए यह तथ्य उभरा कि भारतीय भाषाओं में समाज विज्ञान का शब्दकोश विकसित करने से हम उच्च शिक्षा में मौजूद कई किस्म की समस्याओं से निजात पा सकते हैं।

चीन का उदाहरण एक तुलनात्मक संदर्भ प्रस्तुत करता है। बीसवीं सदी में चीनी विद्वानों ने पश्चिमी पाठयपुस्तकों के एक बड़े आयाम का चीनी भाषा में अनुवाद किया, ताकि चीनी शोधार्थी, शिक्षकों और छात्रों का यूरो-अमरीकी सामग्री से परिचय हो सके। हालांकि समाज विज्ञान में बहुत कम ही चीनी आलेखों का अंग्रेज़ी और अन्य भाषाओं में लेखन हो सका है। भारतीय संदर्भ में दोनों ही पहलू विचारणीय हैं। न ही भारतीय भाषाओं में ज्यादातर अनुवाद हुआ है और न ही इन भाषाओं में समाज विज्ञान से संदर्भित लेखों का गैर-भारतीय भाषाओं के संदर्भ में ही अनुवाद हो पाया है।

इस विसंगति का एक कारण समाज विज्ञान में शोध और लेखन से जुड़ी हमारी पूर्व धारणाओं से जुड़ा है। इन पर फ़ोकस करने से विभिन्न भाषाओं में उपलब्ध समाज विज्ञान के कई महत्वपूर्ण संदर्भ सामने आ सकते हैं, जो आज भी समीचीन है। इन आलेखों को जोड़कर वैश्विक मान्यता प्राप्त समाज विज्ञान के शोध और ज्वलंत विषयों के साथ संदर्भित और क्षेत्रीय भाषाओं और अंग्रेज़ी में अनुदित कर दोनों ही लेखों को साथ-साथ रखते हुए अपने-अपने शब्दकोषों के साथ नयी पीढ़ी नये विचार से रू-ब-रू हो सकती है।

हिंदी सामग्रियों के अध्ययन से संबंधित अपने परिचय में सतीश देशपांडे ने कहा है कि समाज विज्ञान की विषय सामग्री अपने आप में सामाजिक जीवन है और सामाजिक जीवन गहराई से भाषा से जुड़ा होता है इसे समझने, वर्णित करने और विश्लेषित करने के लिए समाज विज्ञान को भाषा, जो सामाजिक जीवन में जिंदा रहती है और भाषा जो सामाजिक जीवन को वैचारिक और उपकरण और अवधारणाओं का संचार करती है, दोनों से गहरा संबंध बनाना होगा। इस दोतरफा संबंध को प्रगाढ़ बनाने के लिए फिर से भाषा की जरूरत होती है, जो सामाजिक विज्ञान को व्यवहार में लाने से संभव होता है, जैसे दैनंदिन की गतिविधियां शिक्षण, सीखना, परीक्षाएं और प्रकाशन आदि। उच्च शिक्षा में प्रयोग की जाने वाली गहन नीति के विकास में हमें नयी गुणवत्तापूर्ण संसाधन सामग्रियों को प्रयोग में लाने, जिनमें अच्छी पाठ्यपुस्तकें, नये विचार मॉडल, उन्नयन से युक्त परीक्षाएं और मूल्यांकन सामग्रियां आदि की जरूरत है। भाषा का सवाल इस बात की ओर इंगित करती है कि हमें उच्च शिक्षा के क्षेत्र में व्यापक सुधार की जरूरत है।

बारहवीं योजना में प्रसार, समानता और श्रेष्ठता पर फ़ोकस स्वागतयोग्य है। इससे भी ज्यादा स्वागतयोग्य बात उच्च शिक्षा में भारतीय भाषाओं पर अधिक ध्यान देना है। इस अभियान के तहत प्रभावी रूप से योजनाओं और नीतियों के क्रियान्वयन का प्रभाव यह होगा कि (1) उच्च शिक्षा में ग्रामीण छात्रों की रोज़गारपरकता और दक्षता बढ़ेगी (2) महानगरेतर विश्वविद्यालयों के शैक्षिक संसाधनों में क्षेत्रीय भाषाओं की गुणवत्ता में सुधार होगा और (3) उच्च शिक्षा में वंचित और गैर-महानगरीय पृष्ठभूमि के छात्रों की संख्या बढ़ेगी।

सुझाये गए रास्ते

भारतीय भाषाओं में गहन सामग्री उत्पादन अभियान तेज हो। उच्च शिक्षा के संसाधनों हेतु प्लेटफॉर्म और डाटाबेस तैयार करने के लिए भारतीय भाषाओं के लिए एक आइसीटी योजना तैयार की जाए। भारतीय भाषाओं के संसाधनों से पाठयक्रम तैयार किए जाए, प्रभावकारिता और गुणवत्ता की जांच के लिए फील्ड टेस्ट किए जाए, यूनिवर्सिटी एकेडमिक स्टाफ ट्रेनिंग कॉलेज या ऐसे ही अन्य शिक्षण संस्थानों की भागीदारी से एक शिक्षक प्रशिक्षण मॉड्यूल तैयार किया जाए और वैसे शिक्षकों की क्षमताएं बढ़ायी जाए, जो द्विभाषी पाठयक्रमों को कक्षाओं में पढ़ाते हैं।

क्रियात्मक योजना के तहत विश्वविद्यालयों के साथ काम करते हुए नयी सामग्री, पाठ्यसामग्री और शिक्षक प्रशिक्षण कार्यशालाएं आयोजित हों। पुस्तकालयों के क्षेत्रीय भाषाओं में उपलब्ध वर्तमान ज्ञान संसाधनों का डिजीटाइजेशन किया जाए, तकनीकी सहायता देने वाले उच्च शिक्षा में उपलब्ध क्षेत्रीय भाषा संसाधनों का डिजीटाइजेशन करें, प्रकाशक राज्य में अपने प्रकाशित संसाधनों को लाइब्रेरी नेटवर्क के साथ जोड़ें, स्नातक महाविद्यालय अपने नये विकसित पाठयक्रमों और संसाधनों की फील्ड टेस्ट करें। इन गतिविधियों को एक-दूसरे से अलग करके नहीं चला जा सकता। भाषाई विभेद को पाटने के लिए विकास, लागू करने और मुख्यधारा में लाने के लिए समन्वित नीतियों की ज़रूरत है। ये गतिविधियां गैर-महानगरीय छात्रों के लिए उत्प्रेरक का काम करेंगी और भारत में विश्वविद्यालयी शिक्षा में व्यापक सुधारों का मार्ग प्रशस्त करेंगी।

हमारी उच्च शिक्षा प्रणाली की मुख्य धारा में भारतीय भाषाओं का प्रवेश एक लंबी परियोजना रही है। इन संसाधनों को राष्ट्रीय शैक्षिक ढांचे के साथ शामिल करके हम इन भाषाओं की विश्लेषणात्मक क्षमताओं को मूर्त रूप दे सकेंगे, हम जिस समाज में रहते हैं, उस समाज के सापेक्ष पाठयक्रम दे सकेंगे। तब छात्र विश्वविद्यालयों में सीखे गए विचारों को अवधारणा के स्तर पर प्रतिस्पर्धी पाएंगे और एक-दूसरे के साथ उस भाषा में बात करने में भी सक्षम होंगे। दीर्घावधि लक्ष्य यही है कि छात्रों को द्विभाषा में प्रवीण बनाया जाए ताकि वे स्थानीय और वैश्विक स्तर पर अवधारणात्मक खाई को पाटने में खुद को सक्षम साबित कर पाएं। ❑

(लेखिका नेशनल मिशन ऑन क्वालिटी हायर एजुकेशन इन द इंडियन लैंग्वेजेज पर योजना आयोग को सौंपी गई नीति की एक लेखिका रही हैं।

ई-मेल : tejaswini.niranjana@gmail.com)

सभी प्रतियोगी परीक्षाओं के लिए संशोधित एवं अद्यतन पुस्तक

प्रमुख आकर्षण

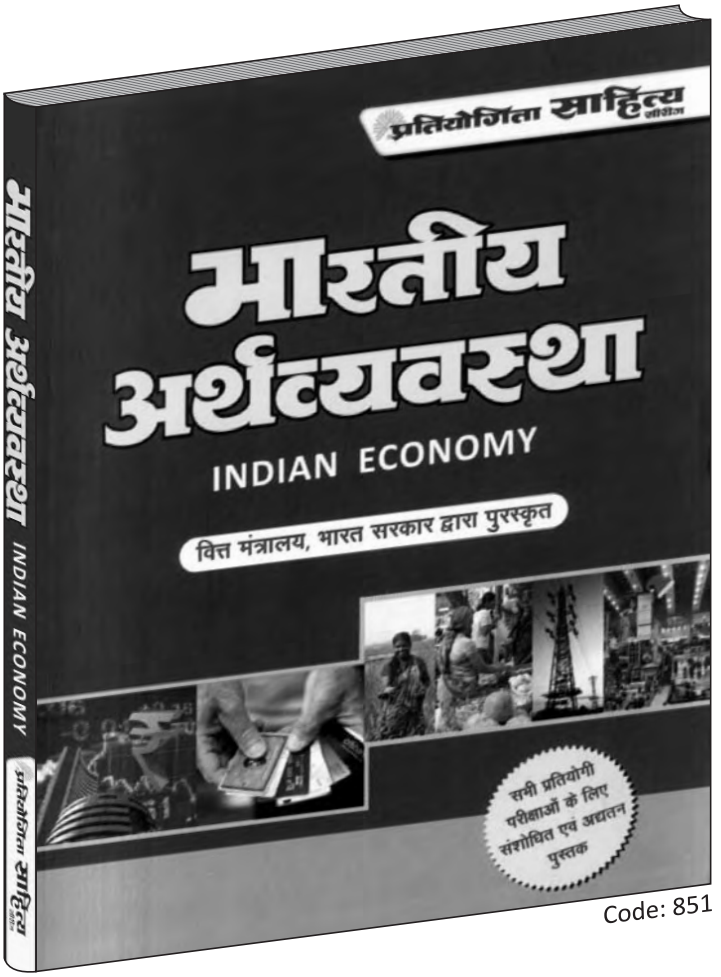

- विश्व विकास रिपोर्ट 2012
- विश्व विकास संकेतांक 2012
- मानव विकास रिपोर्ट–संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम 2013
- भारत 2013 के आधार पर समंक एवं विषय सामग्री
- भारतीय मानव विकास रिपोर्ट 2011
- बारहवीं (2012-2017) पंचवर्षीय योजना
- केन्द्रीय बजट 2013-14
- रेलवे बजट 2013-14
- आर्थिक समीक्षा 2012-13
- राष्ट्रीय विनिर्माण नीति 2011
- भारतीय कृषि की स्थिति 2011-12 रिपोर्ट के समंक
- विभिन्न केन्द्रीय मन्त्रालयों की 2011-12 रिपोर्ट के आधार पर समंक
- जनगणना 2011 के विस्तृत समंक
- विदेशी व्यापार एवं विदेशी ऋण के 2011-12 तक के समंक
- पंचवर्षीय विदेश व्यापार नीति 2009-2014
- मौद्रिक नीति 2012-13 भारत वन स्थिति रिपोर्ट 2011
- भारतीय कृषि में क्षेत्र एवं उत्पादन के 2011-12 तक के समंक
- अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, विश्व बैंक, विश्व व्यापार संगठन, यूरोपियन संघ, आसियान, सार्क इत्यादि अन्तर्राष्टीय संगठनों में 2011-12 तक के समंकों एवं सूचनाओं का समावेश
- वाणिज्यिक बैंकों के मार्च 2012 तक के समंक
- तेरहवें वित्त आयोग की रिपोर्ट और 14वें वित्त आयोग का गठन
- प्रामाणिक स्रोतों के आधार पर पूर्णतः अद्यतन वस्तुनिष्ठ (बहुविकल्पीय) प्रश्न (हल सहित)

आपके निकटतम पुस्तक विक्रेता पर उपलब्ध।

साहित्य भवन | 0562-3293040 | 08958500222 | info@psagra.in | www.psagra.in

YH-118/2013

नयी सदी की शिक्षा

● चैतन्य प्रकाश

शिक्षा का दर्शन अभी भी बहुत आदर्शवादी है और इसका क्रियान्वयन अभी भी अपनी व्यावहारिक उलझनों से जूझ रहा है। शिक्षा के दार्शनिक पक्ष का अवलोकन करने मात्र से पता चलता है कि यह मनुष्य जाति की सर्वाधिक महत्वाकांक्षी परियोजना है

शिक्षा अब एक ऐसा शब्द है जो सीखने-सिखाने की औपचारिक-अनौपचारिक व्यवस्था का पर्याय हो गया है। पिछली पूरी सदी में दुनियाभर में शिक्षा के दर्शन और उसके क्रियान्वयन के संदर्भ में महत्वपूर्ण विमर्श और प्रयोग हुए हैं। ऐसा लगता है कि शिक्षा का दर्शन अभी भी बहुत आदर्शवादी है और इसका क्रियान्वयन अभी भी अपनी व्यावहारिक उलझनों से जूझ रहा है। शिक्षा के दार्शनिक पक्ष का अवलोकन करने मात्र से पता चलता है कि यह मनुष्य जाति की सर्वाधिक महत्वाकांक्षी परियोजना है। यदि भारत के कुछ शीर्ष शिक्षा विचारकों के विचारों पर दृष्टिपात किया जाए तो यह कथन अधिक स्पष्ट हो जाता है। स्वामी दयानंद ने शिक्षा को वैदिक आदर्शों के आधार पर विकसित करने पर बल दिया, वे स्त्री शिक्षा के हिमायती थे, पर सहशिक्षा के समर्थक नहीं थे, वे भारत की प्राचीन गुरुकुल परंपरा को पुनर्जीवित और पुर्स्थापित करने के सिद्धांत के प्रतिपादक थे। स्वामी विवेकानंद मानते थे कि ज्ञान अर्थात पूर्णता प्रत्येक मनुष्य में अंतर्निहित है, शिक्षा इस पूर्णता को पाने का मार्ग है। उन्होंने ज्ञान प्राप्ति के लिए एकाग्रता की शक्ति को महत्वपूर्ण कारक के रूप में प्रतिपादित किया। वे जनशिक्षा के प्रबल समर्थक थे। वे मातृभाषा शिक्षण को आवश्यक मानते थे। वे गुरु-शिष्य परंपरा के महती आदर्शों से प्रेरित शिक्षा के समर्थक थे। वे त्यागपूर्ण जीवन और आध्यात्मिक जीवन की ओर ले जाने वाली शिक्षा के पक्षधर थे। आधुनिक भारत की महत्वपूर्ण शिक्षाशास्त्री और नेत्री ऐनी बेसेंट भी भारतीय प्राचीन जीवन मूल्यों को आदर्श रूप में स्वीकार करने वाली शिक्षा की प्रतिपादक थीं। वे शारीरिक, मानसिक, धार्मिक और नैतिक शिक्षा के महत्व पर बल देती थीं। उन्होंने विद्यार्थी की आयु को जन्म से सात वर्ष तक, सात से चौदह वर्ष तक और चौदह से इक्कीस वर्ष तक को तीन भागों में विभाजित कर क्रमशः शारीरिक, भावनात्मक और मानसिक स्तर पर शिक्षा नियोजन का सिद्धांत प्रस्तुत किया था। गुरुदेव के नाम से प्रसिद्ध रवींद्रनाथ टैगोर समष्टि के साथ समरसता को शिक्षा का मूल सिद्धांत मानते थे। इस समरसता को वे मुख्यतः प्रकृति, मनुष्य परिवेश और अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के साथ समरसता के रूप में व्याख्यायित करते थे। टैगोर के अनुसार वास्तविक शिक्षा वह है जो जीवन को अस्तित्व के साथ समरस बनाती है। टैगोर मानते थे कि शिक्षा का प्राथमिक उद्देश्य शिक्षार्थी के जीवन को विश्व के साथ समस्वर बनाना है। विश्वभारती के संस्थापक रवींद्रनाथ के शिक्षा दर्शन के तीन प्रमुख आयाम थे- प्रकृतिवाद, मानवतावाद और अंतर्राष्ट्रीयतावाद। वे प्राकृतिक परिवेश में शिक्षा दिए जाने के पक्षधर थे। वे अध्यात्म को जीवन का उत्कर्ष मानते हुए शिक्षा को इस उत्कर्ष की ओर ले जाने के माध्यम के रूप में अनुभव करते थे। वे प्रत्येक मनुष्य में परमात्मा देखने के आदर्श के समर्थक थे। इसलिए वे शिक्षा की प्रक्रिया में बल प्रयोग या हिंसा को अनुचित मानते थे। टैगोर का मानवतावाद वैश्विक था। वे राष्ट्रों की संकुचित सीमाओं से ऊपर उठकर अंतर्राष्ट्रीय समन्वय और सद्भाव की ओर ले जाने वाली शिक्षा को आवश्यक मानते थे। रवींद्रनाथ टैगोर सार्वभौमिक एकात्मता को शिक्षा के महती उदेश्य के रूप में प्रतिपादित करते थे। वे मनुष्य मस्तिष्क की स्वतंत्रता को शिक्षा का उद्देश्य मानते थे।

बीती सदी के सर्वाधिक चर्चित और सम्मानित नेता महात्मा गांधी शिक्षा की मूलभूत संकल्पनाओं के प्रतिपादक थे। वे शिक्षा को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के साथ-साथ सामाजिक प्रगति की आवश्यकता के रूप में चिह्नित करते थे। वे सामाजिक माध्यम से व्यक्ति विकास की बात करते थे। वे चरित्र निर्माण को शिक्षा का महती उद्देश्य मानते थे। आत्मिक विकास और आत्म-साक्षात्कार को वे शिक्षा का उच्चतम लक्ष्य मानते थे। गांधी जी निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा, स्वावलंबन की शिक्षा, मातृभाषा शिक्षण, अहिंसा की शिक्षा, नागरिक जीवन के आदर्शों की शिक्षा, सहकारिता की शिक्षा और स्त्री शिक्षा, व्यावहारिक शिक्षा और शिक्षा में प्रकृतिवाद जैसे अनेक विषयों पर बल देते हुए शिक्षा की सर्वांगीणता के आग्रही रहे। भारतीय स्वाधीनता के संघर्ष में क्रांतिकारी के रूप में भूमिका निबाहने वाले प्रमुख मनीषी और आध्यात्मिक चेतना संपन्न व्यक्तित्व श्री अरविंद 'अतिमानस' की अवधारणा देते हुए, इसके विकास को शिक्षा वास्तविक उद्देश्य मानते थे। श्री अरविंद 'मानस से अतिमानस की ओर' ले जाने वाली यात्रा के लिए शिक्षा की उपादेयता को चिह्नित करते

थे। वे आत्म-साक्षात्कार में सहायक शिक्षा को ही सच्ची शिक्षा मानते थे। वे विद्यार्थी की व्यावहारिक, बौद्धिक, नैतिक और सौंदर्यबोध परक क्षमताओं के विकास के लिए शिक्षा की आवश्यकता को अनुभव करते थे। श्री अरविंद देवत्व की सचेतन शक्ति के जागरण को शिक्षा का असली उद्देश्य मानते थे। वे नैतिक और धार्मिक शिक्षा के पक्षधर थे। बीसवीं सदी के बहुचर्चित मनीषी जे. कृष्णमूर्ति ने संपूर्ण मानव के संपूर्ण विकास के लिए संपूर्ण शिक्षा को आवश्यक माना है। वे समग्रता की शिक्षा के पक्षधर थे। कृष्णमूर्ति स्वयं के और परिवेश के प्रति सजगता और सूक्ष्म आत्मनिरीक्षण की क्षमता को शिक्षा का आवश्यक पहलू मानते थे। वे अनुकरण को अनावश्यक सिद्ध करते हुए प्रति पल स्वयं को समझते जाने की प्रक्रिया को शिक्षा कहते थे। वे जीवन की गहरी और सतत समझ को शिक्षा का उद्देश्य बताते थे। कृष्णमूर्ति गहरे अर्थों में मौलिक व्यक्तित्व की खोज से शिक्षा को जोड़ते थे।

शिक्षा के दार्शनिक पहलुओं का यह विवेचन हमें शिक्षा के महती लक्ष्यों की याद दिलाता है, पर साथ-साथ इन महती लक्ष्यों की वर्तमान शिक्षा के साथ दूरी भी यहां साफ-साफ दिख पड़ती है। अब भारतीय शिक्षा अनेक स्तरों पर आयोजित एक ऐसा प्रक्रम है, जिसके उद्देश्यों और व्यवहार में भी बहुत सारा भटकाव दिखाई देता होता है। इस भटकाव को गौर से देखने पर निम्नांकित प्रश्न उभरते है :

- क्या भारतीय शिक्षा व्यवहारत: समाज के आय-वर्गों के अनुसार बंट गई है?
- क्या भारतीय शिक्षा विद्यार्थियों में तुलना और निंदा की प्रवृत्ति को जाने-अनजाने पोषित करती है?
- क्या भारतीय शिक्षा का व्यावहारिक अंतिम उद्देश्य धन, पद और प्रतिष्ठा अर्जित करना मात्र रह गया है?
- क्या भारतीय शिक्षा मूलत: परीक्षा-केंद्रित है?
- क्या भारतीय शिक्षा का सारा ढांचा प्रशासक, प्रबंधक, शिक्षक के वर्चस्व पर आधारित है?
- क्या भारतीय शिक्षा पाठ्यक्रमों और पुस्तकों पर अत्यधिक निर्भर है?
- क्या इस शिक्षा प्रणाली में छात्र सबसे निरीह प्राणी नहीं है?
- क्या यह शिक्षा प्रणाली अभिभावकों की उदासीनता और अति-सतर्कता/ अति-सहभागिता जैसे दो अतिरेकों को प्रोत्साहित करती है?
- क्या यह शिक्षा प्रणाली कक्षाओं में शिक्षकों के द्वारा सूचना को उंडेलने के व्यवहार को लगातार बढ़ावा देती है?
- क्या इस शिक्षा में विद्यार्थी की भूमिका एक निश्चेष्ट साझीदार और पूरे तंत्र का आज्ञाकारी अनुकरणकर्ता होने की ही है?
- क्या यह शिक्षा नयी पीढ़ी में संतुष्टि, आनंद, पारस्परिक अनुग्रह और विश्वास उत्पन्न करने में विफल हो रही है?
- क्या यह शिक्षा नयी पीढ़ी को कौशलविहीन, अरचनात्मक, अविनीत, उच्छृंखल, और गैर-जिम्मेदार बना रही है?
- क्या यह शिक्षा अंतिमत: भय और लोभ की शिक्षा है?
- क्या अब यह सेवा नहीं बल्कि व्यवसाय या रोज़गार हो गई है?

उक्त प्रश्नावाली आरोप-पत्र जैसी लग रही है। मगर यह भारत की शिक्षा का आत्मलोचनात्मक पक्ष है, जिसका अध्ययन किए बिना भारत की शिक्षा की उन्नति का स्वप्न अधूरा मालूम पड़ता है। इन सभी प्रश्नों के साथ भारत की शिक्षा प्रणाली की मूलभूत चिंताएं उभरती हैं। इन चिंताओं के परिप्रेक्ष्य में नयी सदी की शिक्षा के लिए कुछ सुझाव भी उभरते हैं।

भारत की शिक्षा के स्तर-भेदों को समाप्त या न्यूनतम किए जाने की आवश्यकता है, ख़ास तौर पर विद्यालयी शिक्षा में, ग़रीब और अमीर की मानसिकता को बढ़ावा देने वाले शिक्षा प्रबंधन के बजाय सभी विद्यार्थियों को एक देश के निवासियों की भांति अनुभव हो सकने वाला सहज, सुविधाजनक और स्वाभाविक वातावरण दिए जाने के लिए राष्ट्रव्यापी कुशल शिक्षा प्रबंधन की आवश्यकता है। भौतिक आवश्यकताओं से लेकर शिक्षकीय क्षमताओं, योग्यताओं के स्तरों और प्रकारों तक एक सहज समानता लाए जाने की आवश्यकता है, एक विशाल जनसंख्या वाले विविधतापूर्ण, संघीय गणराज्य में स्तर-भेद मुक्त शिक्षा की व्यवस्था 'सबके लिए शिक्षा' के लक्ष्य को क्रियान्वित करने का सबसे अहम पहलू है। भेदभाव का मानस रचने वाली शिक्षा का विस्तार एक सुख का आभास तो उत्पन्न करता है, पर मूल रूप से ऐसी शिक्षा समाज में, असमानता, द्वेष और वर्ग-संघर्ष के बीज बो देती है, जो शिक्षा के स्वाभाविक लक्ष्यों के विपरीत है। ऐसी शिक्षा 'बोये बीज बबूल का तो आम कहां ते होय' उक्ति को हो चरितार्थ करती है।

शिक्षा के तत्व (कंटेंट) और उसके संप्रेषण की व्यवस्था को तुलना और निंदा के व्यवहार से मुक्त किए जाने की आवश्यकता है। तुलनामुक्त और निंदारहित व्यवहार एक विविधतापूर्ण देश के विद्यार्थियों में आपसी सामंजस्य, सौहार्द, समरसता, सौजन्यता और सौम्यता के जीवनपर्यंत आचरण की नींव रखने जैसा क़दम हो सकता है। यह 'सबके लिए शिक्षा' के लक्ष्य को गहरे अर्थ में पा सकने की भूमिका को व्यक्त करने वाला उपचार होगा।

धन, पद और प्रतिष्ठा के साथ शिक्षा के संबंध को विछिन्न करने वाली व्यवस्था का निर्माण नयी सदी की नयी 'सर्वशिक्षा' के लिए बेहद ज़रूरी है। यदि शिक्षा इस दुष्चक्र का हिस्सा बनी रही तो शिक्षा की व्यापक, उदात्त और उत्तम परिकल्पना सदैव किताबी और उपदेशात्मक ही बनी रहेगी। शिक्षा के अंतिमत: 'सा विद्या या विमुक्तये' के महती लक्ष्य की धारा का प्रतिनिधि होने से ही समाज और देश का सहज विकास संभव है। धन, पद, प्रतिष्ठा का व्यामोह रचने वाली शिक्षा के प्रक्रम से निकले तथाकथित शिक्षित वर्ग का भ्रष्ट, असंवेदनशील, अहंकारी और अपराधी हो जाना अवश्यंभावी है। धन, पद, प्रतिष्ठा पाने के लिए दी जाने वाली शिक्षा का प्रसार या विनिमय गहरे अर्थों में अशिक्षा का ही आदान-प्रदान है। यह उजालों की तख्तियों के पीछे अंधकार का ही व्यापार है।

वर्तमान भारतीय शिक्षा का परीक्षा केंद्रित होना इसकी सर्व व्यापकता और सर्व सुलभता में एक बंधी बांध है। सबके लिए शिक्षा का वचन अर्धवार्षिक, वार्षिक परीक्षाओं के नियमित आयोजन के माध्यम से होने वाली छंटनी की आयोजित और आरोपित प्रक्रिया के साथ मिथ्या होता जाता है। केवल प्रवेश देने मात्र से नहीं, बल्कि हर हाल में ज्ञान की यात्रा का आनंद लेते रह सकने के विफल और विविध अवसरों से शिक्षा सर्वव्यापक (सबके

लिए) बनती है। भारत की विद्यालयी शिक्षा परीक्षाओं के बोझ से दबी है, शायद इसीलिए यहां लगभग हर कक्षा के स्तर पर पढ़ाई छोड़ देने वालों की संख्या अधिक है। शिक्षा को सभी तक पहुंचाना और फिर कठिन बाधाओं के रूप में परीक्षाओं का आयोजन कर छंटनी करते हुए अपनी ही सामाजिक शक्ति के एक बहुत बड़े हिस्से को असफलता के दंश की व्यथा भोगने के लिए छोड़ देना परस्पर अंतर्विरोधी लक्ष्य हैं। परीक्षाओं का दबाव और तनाव विद्यालायी जीवन की सारी गतिविधियों पर भारी पड़ता है। अगर तर्क़ यह है कि परीक्षाओं का भय विद्यार्थियों में अध्ययन की प्रेरणा उत्पन्न करता है, और परिणाम उन्हें प्रोत्साहित करते हैं, तो इस तर्क की नकारात्मकता और अपूर्णता को कसौटी पर कस कर परखा जाना आवश्यक है। वस्तुत: 'परीक्षा केंद्रित-शिक्षा', शिक्षा की व्यापक शक्ति और सामर्थ्य को सीमित और संकीर्ण बनाती है। परीक्षा-परिणामों की तुलनात्मक मीमांसा कर विद्यार्थियों में श्रेष्ठता और हीनता ग्रंथियों का निर्माण करने की प्रवृत्ति और तदनुरूप सामाजिक, सार्वजनिक व्यवहार तो शिक्षा की समूची अवधारणा को ही उलट देता है। रटने की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित कर स्मरण शक्ति को मेघ का पर्याय मान लेने के मिथ्यातत्व से शिक्षा को मुक्त किए जाने की आवश्यकता है। मूल्यांकन की पद्धतियों का सहज, सरल, उदार, मित्रवत, भयरहित और प्रोत्साहनपरक होना तथा शिक्षा का वर्तमान परीक्षा-प्रणाली से नितांत मुक्त होना 'सबके लिए शिक्षा' के लक्ष्य के लिए अत्यंत आवश्यक है।

शिक्षा का समूचा आयोजन प्रशासक, प्रबंधक और शिक्षक के वर्चस्व से संचालित होता है। यहां विद्यार्थी सर्वाधिक गौण भूमिका में है और कमोबेश अभिभावक भी गृहीता छोर (रिसीविंग एंड) पर ही होता है। ऐसे में समूचे तंत्र के असंतुलित और मनमाने हो जाने की आशंका सर्वाधिक होती है। सर्वशिक्षा की सार्थकता के लिए यह आवश्यक है कि शैक्षिक नीति-निर्माण और प्रबंधन में विद्यार्थियों और अभिभावकों की भूमिका को व्यवस्थित और वास्तविक रूप में बढ़ाया जाए और समूचे प्रक्रम को अधिक समावेशी, सहज, विश्वासपूर्ण, संतुलित और साझेदारी के भाव से युक्त बनाया जाए। वास्तव में शिक्षा नीति और प्रबंधन का सर्वाधिक प्रभावित पक्ष विद्यार्थी और अभिभावक ही होते हैं।

पाठ्यक्रमों और पाठ्यपुस्तकों पर अतिनिर्भरता शिक्षा में जीवंतता, रोचकता, रचनात्मकता, मौलिकता और प्रयोगशीलता की सबसे बड़ी शत्रु है। इतना ही नहीं, यह निर्भरता शिक्षा का एक बाघर निर्मित करती है। यह बाघर शिक्षा में परीक्षा, पाठ्यपुस्तकों और पाठ्यक्रमों के साथ फलता-फूलता है। धीरे-धीरे 'प' वर्ण से प्रारंभ होने वाले शब्दों से जुड़ी इन तीनों व्यवस्थाओं के साथ बाघर की जुगलबंदी भी प्रारंभ होती है और बाघर इन व्यवस्थाओं के संचालन को प्रभावित भी करने लगता है। शिक्षा के तंत्र में यथास्थिति या परिवर्तन का बाघर पर असर होता है और बाघर का इन व्यवस्थाओं के संचालन पर असर होता है। इस स्थिति में विद्यार्थी और उसका परिवार मूक अनुपालनकर्ता की तरह इस जुगलबंदी के परिणामों को सहता है। इस अतिनिर्भरता की झंझा से विद्यार्थी को आहत कर नवीनता, सृजनात्मकता और मौलिकता के तलों पर शिक्षा का संयोजन किए जाने की आवश्यकता है। विद्यार्थी के बस्ते का बोझ उसके दिलोदिमाग को भी जकड़ता है। आनंद, उत्साह, उल्लास से युक्त सहज जिज्ञासु, सृजनशील चित्त पर बंदिश की तरह यह अतिनिर्भरता भारी होती जाती है। विद्यार्थी के भीतर की अनंत संभावनाओं पर बहुत जल्द पर्दा पड़ना शुरू हो जाता है। वह अपनी अनुपमेयता और विलक्षणता को खोता हुआ व्यवस्था का मूक अनुगामी अर्थात 'टाइप' बन जाता है। विद्यार्थी को टाइप में तब्दील करने में इस 'प' त्रयी की अनिवार्यता सर्वाधिक जिम्मेदार है। नयी सदी की शिक्षा को इस त्रयी की निर्भरता से मुक्त होना होगा।

नयी सदी की सर्वशिक्षा के ध्येय को स्पष्ट समझने के लिए शिक्षण शैली पर गौर करना होगा। कक्षाओं का सूचनात्मक, भाषणपरक और नीरस होना अब एक रूढ़ि की तरह है, इस रूढ़ि को तोड़कर कक्षाओं को ज्ञानान्वेषी, संवादपरक और जीवंत बनाए जाने की आवश्यकता है। 'शिक्षक ज्ञानी है और छात्र अज्ञानी है' के भ्रम से बाहर आकर खुले और ईमानदार संवाद से कक्षाओं को ऐसा विमर्शस्थल बनाना होगा, जहां शिक्षक और विद्यार्थी साथ मिलकर ज्ञान की तलाश करते हैं। और एक-दूसरे की अन्वेषणात्मक क्षमता के परिपूरक के रूप में एक-दूसरे का सहयोग करते हैं।

विद्यार्थी शिक्षा के समूचे प्रक्रम का एक सचेष्ट, सक्रिय और स्वाभाविक साझेदार होकर अपनी भूमिका निभाने का आत्मविश्वास शिक्षा तंत्र में से अर्जित करे और पूरा तंत्र विद्यार्थी की शक्ति, सामर्थ्य और ऊर्जा के प्रकटीकरण को अपनी सफलता माने तो नयी सदी में नयी बयार बहने जैसी बात होगी।

यदि विद्यार्थी के भीतर की संभावनाओं के प्रकटीकरण को शिक्षा की सफलता समझना प्रारंभ होगा तो स्पर्धात्मक परिवेश की अनावश्यकता और व्यर्थता स्पष्ट होती जाएगी। पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष और अंततोगत्वा वैमनस्य के बीज बोने वाली स्पर्धात्मकता से मुक्त शिक्षा सहयोगशील, पूरकता के बोध से प्रेरित संतुष्टि, आनंद और पारस्परिक अनुग्रह और विश्वास का वातावरण उत्पन्न कर सकेगी और वही वातावरण एक स्वस्थ समाज की आधारशिला बन सकेगा।

महात्मा गांधी शिक्षा को गतिविधिपरक बनाने पर बल देते थे, वे हाथ से किए जाने वाले कार्य को शिक्षा के अहम तत्व के रूप में समझने की आवश्यकता अनुभव करते थे। वे शारीरिक-श्रम प्रधान कार्य को विद्यार्थी के व्यक्तित्व के लिए उपयोगी मानते थे। वे हस्तकलाओं के के माध्यम से शिक्षा दिए जाने के पक्षधर थे। उन्होंने 11 जून, 1938 को हरिजन में लिखा था :

'मुख्य विचार यह है कि बच्चों को जो भी सिखाया जाता है, उसमें हस्तकला के माध्यम से काया मस्तिष्क और आत्मा की संपूर्ण शिक्षा को उसका अंग बनाया जाए। आपको हस्तकला के शिक्षण के माध्यम से बच्चों के समक्ष ऐसा चित्र खींचना होगा जिससे इतिहास, भूगोल, गणित आदि सभी विषयों के पाठ हस्तकला से संबंधित हो जाएंगे।'

8 सितंबर, 1946 को *हरिजन* में उन्होंने बौद्धिक व्यक्तित्व के निर्माण में श्रम की महत्ता को इस तरह प्रतिपादित किया :

'बुद्धिजीविता के विकास के लिए उपयोगी अयांत्रिक श्रम और प्रयुक्त बुद्धिमत्ता ही श्रेष्ठता का साधन है। लोग दूसरे साधनों से भी तीक्ष्ण बुद्धि जीविता का विकास कर सकते

हैं। लेकिन तब यह एक संतुलित विकास न होकर एक असंतुलित और विकृत असफलता की तरह होगा। यह आसानी से किसी को भी विलासी और शैतान बना सकता है। एक संतुलित बुद्धिजीवी ही काया, मस्तिष्क और आत्मा के सद्भावपूर्ण विकास की पूर्वधारणा बना सकता है। यही कारण है कि हम यहां अपने प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में अयांत्रिक श्रम को केंद्रीय स्थान देते हैं। सामाजिक रूप से उपयोगी श्रम के माध्यम से विकसित बुद्धिजीविता सेवा का उपकरण बनेगी और यह आसानी से पथभ्रष्ट नहीं हो सकेगी या भटकाव के रास्ते पर नहीं जा सकेगी।'

शिक्षा में शारीरिक श्रम के महत्व को रेखांकित करते हुए भारत के पूर्व राष्ट्रपति और प्रख्यात शिक्षाविद डॉ. जाकिर हुसैन ने इस तरह अपने विचार व्यक्त किए थे :

''किसी वांछित जनशिक्षण का पहला उद्देश्य शैक्षिक अयांत्रिक श्रम को उस शिक्षा का मुख्य अवयव बनाकर हासिल किया जा सकता है। दूसरा लक्ष्य नामत: नैतिक अनुभव और नैतिक प्रशिक्षण के निर्माण, शिक्षार्थियों को यह अनुभव कराना कि उनके द्वारा प्राप्त प्रशिक्षण महज उनके जीविकोपार्जन का एक उपकरण भर नहीं है बल्कि एक सहकारी समुदाय में श्रम विभाजन की व्यवस्था में यह वास्तव में जनसेवा का केंद्र है जिसे मेरे विचार में केवल हमारे विद्यालयों को कार्य एवं जीवन के समुदाय के रूप में संगठित कर हासिल किया जा सकता है।'

कौशल-विहीन शिक्षा किताबी कवायद बन कर रह जाती है। प्रतिदिन के व्यवहार से शिक्षा का कोई तंतु जुड़ ही नहीं पाता है। जीवन और शिक्षा के बीच दूरी विद्यार्थी को अपूर्णता और अक्षमता का एहसास कराती है, जो अनेकविध प्रकारों से असंतोष और कुंठा को जन्म देता है। इसके अतिरिक्त शारीरिक श्रम को हेय और तुच्छ मानने का दृष्टिदोष व्यक्ति और समाज दोनों स्तरों पर पनपने लगता है। इसलिए यह आवश्यक है कि उपरोक्त दोनों महापुरुषों की उक्तियों के प्रकाश में नयी सदी की शिक्षा को श्रम, कौशल से युक्त रचनात्मक राह पर चलने के लिए नियोजित और संयोजित किया जाए। श्रम, कौशल और रचनाशीलता का पथ अवश्यंभावी रूप से विद्यार्थी को संतुष्ट, विनीत और शांत होने की दिशा में अग्रसर करेगा।

अंततोगत्वा शिक्षा को लोभ और भय की दोमुखी कारा से आघद करना आवश्यक है। लोभ और भय पर आधारित शिक्षा गहरे अर्थ में विद्यार्थी के लिए मृगमरीचिका के व्यामोह में फंसकर प्यासे, अतृप्त, अशांत और अवसादग्रस्त हो जाने जैसी नियति का निर्माण करती है। भारत सांस्कृतिक और आध्यात्मिक चेतना सम्पन्न महान व्यक्तियों की जन्मभूमि और कर्मभूमि रहा है। सारी दुनिया के शिक्षा तंत्र को रोशनी देने का उत्तरदायित्व निभा सकने की क्षमता इस देश के मानस में मौजूद है। भारतीय शिक्षा को लोभ और मोह के मिथ्या दबाव को त्याग कर अनुग्रह और आनंद के अधिष्ठान पर संयोजित होना होगा। नयी सदी की शिक्षा के उत्कर्ष बिंदुओं के रूप में 'अनुग्रह और आनंद' नामक महाभावों की आकांक्षा मनुष्यता के आलोकपूर्ण भविष्य का आह्वान करने जैसा दूरगामी चिंतन होगा और इन महती उत्कर्ष बिंदुओं की राह में शिक्षा को व्यवसाय और रोज़गार मानकर संचालित करने की सीमित और संकीर्ण सोच से मुक्त होना बहुत ज़रूरी है। अवश्य ही, निम्नतम तल पर यह सोच एक हक़ीक़त है, मगर उच्चतम तलों पर जीवन की अनुभूति करते हुए यह जानना सहज हो जाता है कि शिक्षा सेवा ही नहीं बल्कि एक महती साधना है जो जीवन को आत्यंतिक रूप से जी सकने की सामर्थ्य को उत्पन्न कर विद्यार्थी, शिक्षक या अन्य शिक्षा सहभागी को सच्ची एवं अक्षय, अनंत संपदा से समृद्ध करती है। यह संपदा अनुग्रह और आनंद की संपदा है। ❑

(लेखक जापान के ओसाका विश्व विद्यालय में विशिष्ट नियुक्ति पर एसोसिएट प्रोफेसर हैं।
ई-मेल : chaitanyapra@gmail.com)

योजना
आगामी अंक

अक्तूबर 2013

योजना का अक्तूबर 2013 का अंक **विकास, रोज़गार और ग़रीबी** पर केंद्रित होगा।
इस अंक का मूल्य होगा मात्र ₹ 10 ।

नवंबर 2013

योजना का नवंबर 2013 का अंक **भूमि एवं प्राकृतिक संसाधन** पर केंद्रित होगा।
इस अंक का मूल्य होगा मात्र ₹ 10 ।

कौशल सबके लिए

● सुनीता सांधी
कुंतल सेनसरमा

भारतीय अर्थव्यवस्था 1991 में आर्थिक सुधारों की शुरुआत से ही उच्च विकास की ओर अग्रसर है। परंतु विकास दर एक जैसी नहीं रही है। अपेक्षाकृत निम्न गुणवत्ता वाले रोज़गार, शिक्षा का स्तरहीन होना, बीच में ही पढ़ाई छोड़ने वालों की बढ़ती संख्या, अधोस्तरीय व्यावसायिक प्रशिक्षण, अपर्याप्त सेवाकालीन प्रशिक्षण सुविधाओं के कारण कुशलता जनशक्ति का गंभीर अभाव रहा है तथा मांग और आपूर्ति में असंतुलन बना हुआ है। अधिकाधिक समावेशन के साथ तीव्रतर विकास दर हासिल करने के लिए 12वीं योजना की रणनीति में अनेक ऐसी बातें शामिल की गई हैं, जिनका परस्पर गहरा संबंध है। इनमें विशेषकर निर्धनों के लिए अनिवार्य स्वास्थ्य और शिक्षा सेवा सुविधाओं की सुलभता (कौशल विकास सहित) शामिल है। बारहवीं योजना दस्तावेज़ में कहा गया है कि त्वरित, अनवरत और समावेशी विकास के लिए जहां एक ओर कौशल विकास की भूमिका निर्णायक है, वहीं यह उभरती युवा पीढ़ी को रोज़गार के सम्मानपूर्ण अवसर उपलब्ध कराने के लिए भी आवश्यक है।

प्रस्तुत आलेख शिक्षित बेरोज़गार युवाओं और विशेषकर वंचित वर्गों के तथा अधूरी शिक्षा प्राप्त युवाओं की रोज़गार पाने की योग्यता बढ़ाने तथा त्वरित और समावेशी विकास को हासिल करने में कौशल विकास की भूमिका पर केंद्रित है।

भारत को जनसंख्या के लिहाज़ से एक बड़ा लाभ यह है कि उसकी 50 प्रतिशत से अधिक आबादी 25 वर्ष से कम आयु की है। यदि इस भारी जनसंख्या के कौशल में उपयुक्त विकास हो सके तो भारत संपूर्ण विश्व की कौशल राजधानी बन सकता है। बोस्टन कंसल्टिंग ग्रुप ने 2008 में अपने अध्ययन में स्पष्ट इंगित किया है कि 2020 तक जब विश्व के अन्य देश 4 करोड़ 70 लाख कार्यशील लोगों के अभाव से जूझ रहे होंगे, भारत में 5 करोड़ 60 लाख कार्यशील लोगों का अतिशेष होगा। परंतु, वर्तमान में भारत में प्रशिक्षित युवाओं का प्रतिशत 10 के क़रीब है। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन (एनएसएसओ) की 61वीं रिपोर्ट के अनुसार इसे विश्व में सबसे कम अनुपातों में गिना जाता है। अतएव, जनसांख्यिकीय वरदान का पूरा-पूरा लाभ उठाने के लिए ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना में यह स्वीकार किया गया कि कौशल विकास एक गतिशील प्रक्रिया है और व्यक्तिगत कौशल को निरंतर ऊंचा उठाने की आवश्यकता है ताकि कार्यबल (कामगार) प्रासंगिक और रोज़गार के योग्य बना रहे। तदनुसार 11वीं योजना में त्रिस्तरीय संस्थागत संरचना तैयार की गई, जिसमें नीतिगत दिशानिर्देश के लिए प्रधानमंत्री की राष्ट्रीय कौशल विकास परिषद, विभिन्न केंद्रीय मंत्रालयों और राज्यों के बीच कौशल विकास समन्वय बोर्ड और कौशल विकास हेतु निजी क्षेत्र के प्रयासों को उत्प्रेरित करने के लिए राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (एनएसडीसी) सम्मिलित हैं। परंतु प्रधानमंत्री की परिषद और समन्वय बोर्ड अब राष्ट्रीय कौशल विकास एजेंसी (एनएसडीए) में समाविष्ट हो गई हैं। कौशल विकास की सभी गतिविधियों के लिए अब यही एकल संस्था काम करेगी। एनएसडीए, अन्य बातों के अलावा (1) 12वीं पंचवर्षीय योजना में निर्धारित कौशल विकास के सभी लक्ष्यों को पूरा करने के लिए सभी संभव क़दम उठाएगा; (2) विभिन्न केंद्रीय मंत्रालयों/विभागों, राज्य सरकारों, एनएसडीसी और निजी क्षेत्र के बीच कौशल विकास के दृष्टिकोण में समन्वय और समरसता लाने और अनुसूचित जातियों, जनजातियां, अन्य पिछड़ा वर्गों, अल्पसंख्यकों, महिलाओं और विकलांग व्यक्तियों जैसे वंचित और कमज़ोर वर्गों के कौशल विकास की आवश्यकताओं को सुनिश्चित करेगा।

वर्ष 2009 में कौशल विकास पर राष्ट्रीय नीति बनाई गई, जिसका उद्देश्य 2022 तक 50 करोड़ लोगों को हुनरमंद बनाना था। यह नीति आर्थिक विकास की सरकारी नीतियों से संबद्ध गतिशील और मांग-आधारित प्रयासों पर ज़ोर देती है। भारत सरकार कौशल विकास के ज़रिये रोज़गार पात्रता में वृद्धि के उद्देश्य से कौशल विकास की अनेक योजनाओं को क्रियान्वित कर रही है। मौजूदा और नये श्रमिकों (कार्यबल) के कौशल को और तराशने के प्रयास भी जारी हैं। कुछ प्रमुख कार्यक्रम इस प्रकार हैं :

- **शिल्पी प्रशिक्षण कार्यक्रम (सीटीएस)** श्रम और रोज़गार मंत्रालय के अंतर्गत, यह कार्यक्रम स्कूली पढ़ाई पूरी करने वाले युवाओं को प्रणालीबद्ध ढंग से प्रशिक्षण देकर उद्योग जगत को अर्द्धकुशल/कुशल श्रमिक प्रदान करने; और शिक्षित युवाओं को औद्योगिक रोज़गार के लिए वांछित कौशल प्रदानकर उनकी बेरोज़गारी दूर करने के उद्देश्य से चलाया जा रहा है। संबंधित राज्यों और केंद्रशासित प्रदेशों में जनसंख्या के अनुपात में अ.जा./अ.ज.जा. के लिए स्थान आरक्षित रखी जाती है। शारीरिक विकलांगों के लिए 3 प्रतिशत और महिलाओं के लिए 25 प्रतिशत स्थान आरक्षित रखने के दिशानिर्देश राज्य सरकारों को जारी किए गए हैं। ये स्थान प्रत्येक राज्य/के.शा. प्रदेश की सामान्य आरक्षण नीति के आधार पर भरे जा सकते हैं। कुल आरक्षण 50 प्रतिशत तक सीमित है।
- **मॉड्यूलर :** रोज़गार योग्य कौशल पर कौशल विकास पहल (एमईएस) का क्रियान्वयन श्रम और रोज़गार मंत्रालय द्वारा

किया जा रहा है। इसे उद्योग, राज्य सरकारों और व्यावसायिक प्रशिक्षण के विशेषज्ञों से गहन परामर्श के बाद तैयार किया गया है। एमईएस में जीवनपर्यंत कौशल के उन्नयन और तराशने के लिए ढेरों 'सरल' अवसर उपलब्ध होते हैं। इसमें पूर्व में सीखे कौशल को भी मान्यता दी जाती है। मुख्य उद्देश्य स्कूली पढ़ाई अधूरी छोड़ने वालों, मौजूदा कामगारों, आईटीआई प्रशिक्षित युवाओं आदि को सरकारी, निजी संस्थाओं और उद्योगों में उपलब्ध आधारभूत संरचना का अधिकाधिक लाभ उठाते हुए रोज़गार के अपने अवसरों को सुधारने के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण प्रदान करना है।

- **स्वर्ण जयंती ग्राम स्वरोज़गार योजना (एसजीएसवाईएसपी) :** ग्रामीण विकास मंत्रालय की इस योजना का पुनर्गठन राष्ट्रीय ग्रामीण आजीविका मिशन (एनआरएलएम) के रूप में किया गया है, जो संक्षेप में, आजीविका के रूप में लोकप्रिय है। यह योजना निर्धनों में छुपी क्षमताओं को तराशने और देश की उभरती अर्थव्यवस्था में भागीदारी निभाने के योग्य उनकी क्षमताओं (सूचना, ज्ञान, कौशल, साधन, वित्त और समष्टीकरण) को पूर्णता प्रदान करती है। यह वृद्धि और विस्तार; रोज़गार के विदेशी बाज़ार हेतु कौशल विकास; और स्वरोज़गारियों और उद्यमियों के संपोषण पर कार्य करती है। इस योजना के तहत विशेष परियोजनाएं बाज़ार की मांग के अनुसार रोज़गार दिलाने वाला कौशल प्रदान करती है। यह एक परिणाम आधारित कार्यक्रम है और वित्तीय सहायता रोज़गार दिलाने (प्लेसमेंट) से जुड़ी होती है। इस कार्यक्रम के अंतर्गत किसी भी एजेंसी को प्रशिक्षण और प्लेसमेंट सेवाओं के लिए आर्थिक सहायता प्राप्त करने के लिए प्रशिक्षित युवाओं के 75 प्रतिशत लोगों को काम दिलाना (प्लेसमेंट) आवश्यक है। इसका मुख्य उद्देश्य 18-35 वर्ष आयु समूह के ग्रामीण बीपीएल (ग़रीबी रेखा के नीचे के) युवाओं को बाज़ार की मांग के अनुसार कौशल सिखाना और उन्हें उपयुक्त रोज़ार दिलाना है।
- **ग्रामीण स्वरोज़गार प्रशिक्षण संस्थाएं (आरएसईटीआई) :** सरकार देश के प्रत्येक ज़िले में बीपीएल वाले ग्रामीण युवाओं को प्राथमिक और कौशल विकास का प्रशिक्षण देने के लिए आरएसईटीआई की स्थापना कर रही है ताकि वे सूक्ष्म उद्यम शुरू कर सकें अथवा सम्मानजनक वर्तन वाला रोज़गार प्राप्त कर सकें। ये संस्थाएं बैंकों की अगुवाई वाली संस्थाएं हैं, जो राज्य सरकारों के सक्रिय सहयोग से सार्वजनिक/निजी क्षेत्र के बैंकों द्वारा चलाई जाती है। ग्रामीण स्वरोज़गार प्रशिक्षण संस्थाओं की प्रमुख विशेषताओं में नि:शुल्क, अनूठी और सघन प्रशिक्षण के साथ-साथ अल्पावधि की आवासीय सुविधा और नि:शुल्क भोजन की सुविधा भी सम्मिलित है। यह कार्यक्रम विशेष रूप से ग्रामीण युवाओं के लिए तैयार किया गया है। ग्रामीण विकास मंत्रालय इन संस्थाओं (आरएसईटीआई) के ढांचागत विकास के लिए अधिकतम एक करोड़ रुपये प्रति संस्था के हिसाब से देता है। साथ ही प्रायोजक बैंकों को ग्रामीण बीपीएल युवाओं के प्रशिक्षण का ख़र्च वहन करने हेतु डीआरडीए (जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों) के माध्यम से सहायता दी जाती है। राज्य सरकारों, प्राथमिकता के आधार पर इन संस्थाओं के लिए नि:शुल्क भूमि उपलब्ध कराती हैं। संस्थाओं के दिन-प्रतिदिन के कार्यों के लिए बैंक उत्तरदायी होते हैं।
- **शहरी ग़रीबों में रोज़गार संवर्धन हेतु कौशल प्रशिक्षण (स्टेप-अप) :** यह योजना आवास और ग़रीबी उपशमन मंत्रालय की स्वर्ण जयंती शहरी रोज़गार योजना (एसजेएसआईवाई) का ही एक अंग है। इसे हाल ही में राष्ट्रीय शहरी आजीविका मिशन (एनयूएलएम) के रूप में पुनर्गठित किया गया है। इसमें शहरी ग़रीबों को अपनी क्षमता और कौशल में वृद्धि के लिए सहायता पर ज़ोर दिया जाता है ताकि वे स्वरोज़गार के लिए अपनी क्षमता का उन्नयन कर सकें या फिर बेहतर वेतन वाला रोज़गार प्राप्त कर सकें। 'स्टेप अप' योजना का लक्ष्य आयोग द्वारा समय-समय पर परिभाषित शहरी ग़रीबों की ग़रीबी रेखा से नीचे रहने वाले हैं। स्टेप योजना के तहत लाभार्थी महिलाओं की संख्या 30 प्रतिशत से कम नहीं होगी। अनुसूचित जातियों और जनजातियों को न्यूनतम संबंधित शहर/कस्बे में उनकी बीपीएल जनसंख्या के अनुपात में लाभ मिलना चाहिए। इस कार्यक्रम के अंतर्गत विकलांगजनों के लिए 3 प्रतिशत स्थान आरक्षित करना होगा। अल्पसंख्यकों के कल्याण हेतु प्रधानमंत्री के नये 15 सूत्री कार्यक्रम को दृष्टिगत रखते हुए 'स्टेप अप' के तहत राष्ट्रीय स्तर पर नैतिक और वित्तीय लक्ष्यों का 15 प्रतिशत अल्पसंख्यक समुदायों के लिए निर्धारित किया जाए।
- **प्रशिक्षण एवं रोज़गार कार्यक्रम को सहायता (एसटीईपी-स्टेप) :** यह महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के अंतर्गत आता है। यह योजना महिलाओं के कौशल के उन्नयन के लिए प्रशिक्षण देने हेतु शुरू की गई है। महिलाओं को संपोषणीय रोज़गार दिलाने के लिए विभिन्न कार्योन्मुखी परियोजनाओं के ज़रिये यह प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके लिए ऐसी परियोजनाएं चुनी जाती हैं जिनमें महिलाओं को अधिक संख्या में काम मिलता है। इस योजना को 2009-10 में संशोधित किया गया और अब इसमें स्थानीय रूप से उपयुक्त क्षेत्रों की सहायता के विकल्प के साथ-साथ रोज़गार के 10 पारंपरिक क्षेत्र शामिल किए गए हैं। यह कार्यक्रम महिलाओं के कौशल विकास पर विशेष बल देते हुए, उन्हें बाज़ार और ऋण की सुविधा दिलाने पर भी ज़ोर देता है ताकि उनके लिए संपोषणीय रोज़गार सुनिश्चित हो सके। इस कार्यक्रम में जो गतिविधियां शामिल की गई हैं, उनमें व्यावहारिक रूप से संभव समूहों में महिलाओं को संगठित करना, उनके कौशल में निखार लाना, उत्पादक परिसंपत्तियों/वैतनिक रोज़गार की सुविधा का प्रबंध करना आगे और पीछे (सहायता और बाज़ार की सुविधा) का संपर्क सूत्र तैयार करना, ऋण सुलभ कराना, सहायक सेवाओं की प्रबंध करना, जागरुकता फैलाना, महिलाओं के प्रति संवेदनशीलता की भावना आदि सम्मिलित हैं। योजना का उद्देश्य न केवल लाभार्थियों की आय में वृद्धि के लिए कौशल उन्नयन हेतु प्रशिक्षण देना है बल्कि यह शिक्षा, स्वास्थ्य परीक्षण, पोषाहार, पोषण-शिक्षा, कानूनी साक्षरता और आश्रित बच्चों के लिए

पालनघर की सुविधाओं सहित सेवाओं का एक पूरा गुलदस्ता भी उपलब्ध कराता है।

- **परवाज़ :** ग्रामीण बीपीएल अल्पसंख्यकों के लिए यह व्यापक कौशल और शिक्षा का एक मार्गदर्शी कार्यक्रम है जिसको ग्रामीण विकास मंत्रालय क्रियान्वित करता है। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य देश के बीपीएल अल्पसंख्यक युवाओं को शिक्षा, कौशल और रोज़गार देकर देश की मुख्यधारा में शामिल करना है। यह परियोजना हाशिये पर खड़े अल्पसंख्यक युवाओं को अपनी अस्मिता, स्वतंत्रता और समानता पाने की दिशा में पहला क़दम रखने के एक मंच के तौर पर काम करती है। इस योजना के तहत अल्पसंख्यक समुदाय के अधकचरी शिक्षा प्राप्त युवाओं की गुणवत्ता युक्त शिक्षा सुनिश्चित करने के लिए क्रमिक पाठ्यक्रम के अनुसार सीखने का निरंतर अवसर प्रदान किया जाता है।
- **उद्यम संबंधी कौशल विकास कार्यक्रम (ईएसडीपी) :** सूक्ष्म, लघु एवं मध्यम उद्यम मंत्रालय (एमएसएमई) के इस कार्यक्रम के अंतर्गत संभावित उद्यमियों और मौजूदा कामगारों के कौशल को निखारने के लिए व्यापक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित किए जाते हैं। इसके अतिरिक्त, एमएसएमई के नये कामगारों और तक़नीशियनों के कौशल को तराशा जाता है। सामाजिक रूप से कमज़ोर वर्गों (अ.पि.व., अ.जा., अ.ज.जा., अल्पसंख्यक और महिलाएं) के युवाओं में कौशल विकास के लिए विशेष रूप से तैयार किए गए कार्यक्रम राज्यों के विभिन्न क्षेत्रों में आयोजित किए जाते हैं। इनमें कम विकसित क्षेत्र भी शामिल हैं। ईएसडीपी के कुल लक्ष्य के 20 प्रतिशत कार्यक्रम समाज के कमज़ोर वर्गों अर्थात् अ.जा., अ.ज.जा., महिलाओं और विकलांगजनों के लिए आयोजित किए जाते हैं।
- **पर्यटन मंत्रालय का हुनर से रोज़गार :** यह कार्यक्रम सत्कार क्षेत्र में कौशल की कमी को दूर करने के उद्देश्य से चलाया जाता है। इसमें समाज के आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्ग के युवाओं पर विशेष ज़ोर दिया जाता है। पाठ्यक्रम का संचालन पर्यटन मंत्रालय और भारतीय पर्यटन विकास निगम द्वारा प्रायोजित होटल प्रबंधन और भोजन शिल्प (फूड क्राफ्ट) संस्थाओं द्वारा किया जाता है। इस योजना के अंतर्गत 18-28 वर्ष के आयु समूहों को 6 से 8 सप्ताह का प्रशिक्षण नि:शुल्क दिया जाता है।
- मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन पॉलीटेक्निक संस्थाओं का संचालन दसवीं कक्षा के बाद युवाओं को कोई-न-कोई कौशल सिखाना है। सिविल, वैद्युतिकी और यांत्रिक अनियंत्रिकी जैसे पारंपरिक विषयों में तीन वर्ष का डिप्लोमा पाठ्यक्रम चलाया जाता है। पिछले दो दशकों में अनेक पॉलीटेक्निक संस्थाओं ने नये-नये विषयों जैसे– इलेक्ट्रॉनिक्स, कंप्यूटर विज्ञान, चिकित्सा प्रयोगशाला प्रौद्योगिकी, चिकित्सालय अभियांत्रिकी और वास्तुशिल्पी सहायता जैसे व्यावसायिक कार्यों के लिए प्रशिक्षण देना शुरू किया है। विभिन्न व्यावसायिक विषयों में विशेषज्ञता के लिए 1-2 वर्ष के एडवांस्ड डिप्लोमा और पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा पाठ्यक्रम भी चलाए जाते हैं। रोज़गारोन्मुखी कुशल जनशक्ति के विस्तार के लिए एक नया प्रयोग शुरू किया गया है। उद्योग संघों के परामर्श से सरकारी और निजी क्षेत्र की भागीदारी (पीपीपी) के माध्यम से 300 पॉलीटेक्निक संस्थाओं की स्थापना की जा रही है।
- **समेकित कौशल विकास कार्यक्रम (आईएसडीएस) :** कपड़ा मंत्रालय द्वारा चलाए जा रहे इस कार्यक्रम का उद्देश्य कपड़ा और उससे जुड़े हस्तशिल्प, हथकरघा, रेशम कृषि, जूट, तक़नीकी वस्त्र आदि जैसे संबंधित क्षेत्रों की कुशल और प्रशिक्षित जनशक्ति की आवश्यकताओं को पूरा करना है। उद्योग जगत की आवश्यकता और मांग के अनुसार प्रशिक्षण का सुसंगत और समेकित पाठ्यक्रम तैयार किया जाता है। यह योजना जहां एक ओर मंत्रालय की मौजूदा सुदृढ़ संस्थाओं और प्रशिक्षण अनुभवों का लाभ लेती है, वहीं दूसरी ओर, पीपीपी पद्धति के आधार पर निजी क्षेत्र की भागीदारी भी सुनिश्चित करती है। बुनियादी प्रशिक्षण, कौशल उन्नयन, उभरती प्रौद्योगिकियों में उन्नत प्रशिक्षण, प्रशिक्षकों का प्रशिक्षण आधुनिक प्रौद्योगिकी के अनुकूल बनाने, पुनर्प्रशिक्षण प्रबंधन कौशल, उद्यमिता विकास आदि जैसे कौशल विकास के विविध विधाओं का समावेश किया गया है। प्रशिक्षुओं के चयन में महिला, अ.जा./अ.ज.जा. और विकलांगजनों, अल्पसंख्यकों तथा बीपीएल श्रेणी के व्यक्तियों को प्राथमिकता दी जाती है।
- जर्मनी और डेनमार्क के सहयोग से 10 एमएसएमई टूल रूप स्थापित किए गए हैं। इनका उद्देश्य तक़नीकी उन्नयन के लिए एमएसएमई की सहायता करना है। नये और आधुनिक प्रकार के औज़ारों, सांचों, यंत्रों और घटकों आदि की डिज़ाइन तैयार कर उनका उत्पादन कर उच्च कोटि के औज़ार उपलब्ध कराना इस योजना का प्रमुख लक्ष्य है। स्कूली शिक्षा पूरी न करने वाले युवाओं के लिए विभिन्न प्रकार के अल्पावधि के पाठ्यक्रम और व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करने के अलावा ये टूल रूप टूल डिज़ाइन और सीएडी, सीएएम (कैड-कैम) में स्नातकोत्तर डिप्लोमा जैसे दीर्घावधि के विभिन्न पाठ्यक्रम भी आयोजित करते हैं। दीर्घावधि पाठ्यक्रमों के लगभग सभी प्रशिक्षुओं को विभिन्न उद्योगों में काम मिल जाता है।
- **उड़ान :** यह कार्यक्रम विशेष रूप से जम्मू और कश्मीर के लिए शुरू किया गया है। इसका उद्देश्य 5 वर्ष के अंदर रिटेल, आईटी और बीपीओ सहित विभिन्न क्षेत्रों में 40 हज़ार छात्रों को प्रशिक्षण देना है। यह कार्यक्रम पीपीपी पद्धति के रूप में उद्योग जगत और एनएसडीसी मिलकर चलाते हैं। इसके लिए धनराशि गृह मंत्रालय से प्राप्त होती है।
- **रोशनी :** नाम की कौशल विकास की एक नयी योजना ग्रामीण विकास मंत्रालय ने वामपंथी उग्रवाद से सबसे अधिक प्रभावित देश के 24 ज़िलों के ग्रामीण युवाओं के लिए शुरू की है। झारखंड और ओड़िशा के छह-छह ज़िले, छत्तीसगढ़ से पांच, बिहार से दो और आंध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, पश्चिम बंगाल, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र से एक-एक ज़िले का चयन इस योजना के लिए किया गया है। इस योजना पर अगले तीन वर्षों के दौरान 100 करोड़ रुपये ख़र्च किए जाएंगे। सरकारी और निजी क्षेत्र की तथा निजी क्षेत्र की परस्पर सहभागिता के माध्यम से प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रवेश

स्तर पर युवाओं की योग्यता के आधार पर विभिन्न आवश्यकताओं के लिए 3 माह से एक वर्ष तक की अवधि के चार प्रशिक्षण आदर्श तैयार किए जा रहे हैं।

- श्रम और रोज़गार मंत्रालय वामपंथी उग्रवाद (एलडब्ल्यूई) से प्रभावित 34 ज़िलों में कौशल विकास का कार्यक्रम चला रहा है। इसका उद्देश्य जहां एक ओर कौशल विकास की आधारभूत संरचना (आईटीआई आदि) तैयार करना है, वहीं दूसरी ओर वामपंथी उग्रवाद प्रभावित ज़िलों में मांग के अनुसार अल्पावधि और दीर्घावधि के प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करना है ताकि इन क्षेत्रों के युवाओं को रोज़गार के अच्छे अवसर प्राप्त हो सकें। ये योजना 9 राज्यों– आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखंड, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, ओडिशा, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में चलाई जा रही है।

12वीं योजना हेतु चुनौतियां

बारहवीं योजना में गैर-कृषि क्षेत्र में 5 करोड़ रोज़गार के अवसर पैदा करने का लक्ष्य रखा गया है। योजना के अंत तक कुशल जनशक्ति का उसी के समान एक साझी निधि (पूल) तैयार करना होगा। यह देखते हुए कि हमारे कुल कार्यबल (वर्क फोर्स) का लगभग 93 प्रतिशत अनौपचारिक क्षेत्र में काम करता है, जिनके लिए सामाजिक सुरक्षा की सुविधा या तो बिल्कुल नहीं या नहीं के बराबर है। सबसे बड़ी चुनौती इस समूह के हितों की रक्षा करनी है। अधिकांशतः प्रवासी श्रमिकों, महिलाओं, सामाजिक रूप से कमज़ोर वर्गों का यह समूह कम आय, मामूली कौशल और अल्प शिक्षा से युक्त है। सभी प्रकार की खामियों को दूर करते हुए कुशल जनशक्ति एवं गुणवत्ता युक्त रोज़गार के बीच संतुलन बनाकर प्रशिक्षण का विस्तार एवं उसका दायरा बढ़ाना 12वीं योजना की एक बड़ी चुनौती है। कौशल विकास की दिशा में हाल ही में उठाए गए कुछ प्रमुख क़दम इस प्रकार हैं :

1. **व्यावसायिक पाठ्यक्रमों हेतु ऋण** मान्यता प्राप्त संस्थानों में कौशल विकास के विशिष्ट कार्यक्रमों में प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों को ऋण की सुविधा प्रदान करने के लिए भारतीय बैंक संघ ने पहल की है। ऋण योजना का उद्देश्य न्यूनतम शैक्षिक योग्यता प्राप्त भारतीय नागरिकों को वित्तीय सहायता प्रदान करना, सरकारी और एनएसडीसी समर्थित संस्थाओं के पाठ्यक्रमों में प्रवेश सुनिश्चित कराना है ताकि उन्हें सरकारी मान्यता प्राप्त डिग्री/डिप्लोमा/प्रमाणपत्र मिल सके। ऋण की सीमा तीन माह के पाठ्यक्रम के लिए 20 हज़ार रुपये से लेकर एक वर्ष के पाठ्यक्रम के लिए डेढ़ लाख रुपये तक हो सकती है। ऋण राशि में शिक्षण शुल्क, परीक्षा शुल्क, अवधान राशि, पुस्तकों आदि का ख़र्च शामिल है। इस ऋण से वंचित और कमज़ोर वर्गों के युवाओं को मदद मिलेगी। छात्र, प्रशिक्षण से कौशल प्राप्त कर रोज़गार पाने के बाद अपना ऋण चुका सकते हैं।
2. राष्ट्रीय कौशल योग्यता फ्रेवर्क (एनएसक्यूएफ) तैयार किया गया है ताकि ऊर्ध्वाधर (लंबवत) और क्षैतिजिक गतिशीलता के माध्यम से विकास प्रक्रिया में सहभागिता और प्रगति सुनिश्चित की जा सके। इससे अल्प शिक्षा और कम कुशल श्रमिकों को मदद मिलेगी। मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने इसके लिए एक मार्गदर्शी परियोजना तैयार की है। एनएसडीए इस फ्रेमवर्क को आगे बढ़ाएगा।
3. श्रम और रोज़गार मंत्रालय श्रम बाज़ार सूचना प्रणाली का विकास कर रहा है ताकि श्रम बाज़ार पर संख्यात्मक और गुणात्मक सूचना और जानकारी प्रदान कर सके, जिससे संबंधित पक्षों को व्यापार की आवश्यकताओं, भावी जीवन के नियोजन, शिक्षा और प्रशिक्षण के अवसर, रोज़गार की तलाश, भर्ती, श्रम नीतियों और कार्यबल निवेश नीतियों के बारे में उचित और सुविचारित निर्णय लेने में मदद मिल सके। एनएसडीसी द्वारा गठित क्षेत्रवार कौशल परिषदें इसमें महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही हैं।

भावी मार्ग

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि सरकार ने क्षमता सृजन, ढांचागत विकास, संस्थागत ऋण के प्रावधान, छात्रवृत्ति सहित कौशल विकास के विभिन्न क्षेत्रों में महत्वपूर्ण क़दम उठाए हैं। परंतु 12वीं योजना के अंत तक 5 करोड़ कुशल कार्यबल (वर्कफोर्स) और बेहतर रोज़गार के वांछित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयासों को गति और बल देने की आवश्यकता है। अगले पांच वर्षों में इस चुनौती से निपटने के लिए अनेक क़दम उठाए जाने की आवश्यकता है। ये हैं :

1. प्रौद्योगिकी के उपयोग से दूर-दराज़ और दुर्गम क्षेत्रों में कार्यक्रम का विस्तार (ई-शिक्षा और कंप्यूटर जनित कार्यक्रम)।
2. उन विकासखंडों में जहां कौशल विकास योजना अभी तक नहीं पहुंच सकी है, उनमें कौशल विकास केंद्रों की स्थापना और योजना का सुचारू कार्यान्वयन।
3. व्यवसाय और क्षेत्र के आधार पर कौशल की मांग और आपूर्ति में अंतर का विश्लेषण।
4. उद्योग जगत के परामर्श से वित्त पोषण, सेवा-प्रदायगी, प्रशिक्षकों का प्रशिक्षण, पाठ्यक्रमों की रूपरेखा और पाठ्यचर्या के क्षेत्र में सरकारी और निजी क्षेत्र की भागीदारी को प्रोत्साहन ताकि उन्हें बाज़ार की आवश्यकता के अनुसार तैयार किया जा सके (राष्ट्रीय कौशल योग्यता फ्रेमवर्क के दायरे में रहते हुए)।
5. काम दिलाने के पूर्व और काम मिलने के बाद लाभार्थियों/प्रशिक्षणार्थियों की 'आधार' आधारित जानकारी प्राप्त करने की व्यवस्था कायम करना।
6. रोज़गार कार्यालयों का पुनर्गठन ताकि वे व्यावसायिक मार्गदर्शन, परामर्श, सामान्य कौशल के प्रशिक्षण और प्लेसमेंट (रोज़गार दिलाने) जैसी गतिविधियों को मिलाकर मानव संसाधन विकास केंद्रों के रूप में काम कर सकें।
7. विश्वसनीय अभिमान्यता प्रणाली की स्थापना; अनावश्यक विलंब को दूर करने के लिए प्रमाणन प्रणाली को चुस्त-दुरुस्त बनाना।
8. सुदृढ़ निगरानी और मूल्यांकन प्रणाली स्थापित करना ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि विभिन्न योजनाओं और कार्यक्रमों के तहत जारी धनराशियां पणिाम आधारित हों।
9. सीखने की साझी व्यवस्था और उसके पुनर्प्रयोग हेतु उत्तम प्रयासों (पद्धतियों) का दस्तावेजीकरण। ❑

(लेखिका सुनीता सांधी और लेखक कुंतल सेनसरमा योजना आयोग के श्रम, रोज़गार और जनशक्ति प्रभाग में क्रमशः परामर्शदाता और निदेशक हैं।

ई-मेल : sunitasanghi1960@gmail.com)

शिक्षा का अधिकार कानून 2009 अवसर और चुनौतियां

● अम्बरीष राय

बहुचर्चित शिक्षा के अधिकार का कानून, 2009 को लागू करने की संसद द्वारा निर्धारित समय सीमा 31 मार्च, 2013 को समाप्त हो गई जबकि सर्वशिक्षा अभियान के दौरान भर्ती किए गए अप्रशिक्षित एवं अल्पवेतन प्राप्त लगभग 5 लाख अध्यापकों को प्रशिक्षित करने व नियमित करने की दूसरी समय-सीमा में लगभग डेढ़ साल (मार्च, 2015) का समय बचा हुआ है। हालांकि केंद्र सरकार ने कानून को लागू करने की समय-सीमा बढ़ाने से इंकार कर दिया है और राज्य सरकारों से कहा है कि वे युद्ध स्तर पर प्रयास करके इसे अमलीजामा पहनाएं, परंतु अगली कार्ययोजना क्या होगी इस पर केंद्र व राज्य सरकारें पूरी तरह मौन हैं। शिक्षा के अधिकार के लिए कार्यरत 'राइट टू एजुकेशन फोरम', जो देश के दस हज़ार सिविल सोसाइटी संगठनों का नेटवर्क है, द्वारा 3 अप्रैल को दिल्ली के कांस्टिट्यूशन क्लब में आयोजित एक राष्ट्रीय अधिवेशन में प्रस्तुत स्टेटस रिपोर्ट के अनुसार अब तक देश के महज 8 प्रतिशत विद्यालयों में ही यह कानून लागू किया जा सका है। यह रफ़्तार बहुत ही निराशाजनक है और इस तरह शिक्षा के अधिकार को लागू होने में तो बहुत लंबा समय लग जाएगा। सरकारी आंकड़ों के मुताबिक देश में अभी भी अस्सी लाख बच्चे स्कूलों से बाहर हैं।

मगर गैर-सरकारी आंकड़ों के अनुसार यह संख्या इससे ज़्यादा है। देश के विभिन्न हिस्सों में 6 से 14 साल की उम्र के करोड़ों बच्चे बाल श्रम, सड़कों, ढाबों, खानों-खदानों, में काम करते या सड़कों पर भीख मांगते देखे जा सकते हैं। देश के दूर-दराज अशांत क्षेत्रों में स्कूल नियमित रूप से चल ही नहीं पा रहे हैं। इन इलाक़ों में शिक्षा पाने की अभिलाषा रखने वाले बच्चे शिक्षा के जर्जर ढांचे की वजह से शिक्षा पाने के अधिकार से वंचित हैं। उच्चतम न्यायालय द्वारा बार-बार हस्तक्षेप के बाद भी राज्य सरकारें संरचनागत ढांचा उपलब्ध नहीं करा सकीं हैं। अकेले बिहार में ही 13,000 स्कूलों में पीने का पानी तक उपलब्ध नहीं है। 2010-11 के आंकड़े के अनुसार देश में अभी भी दस में से एक स्कूल में पीने के पानी का अभाव है जबकि पांच में से मात्र दो स्कूलों में ही कार्यरत शौचालय (लड़के व लड़कियों के लिए संयुक्त) मौजूद है। पांच में से महज दो स्कूलों में ही लड़कियों के लिए अलग से शौचालय की व्यवस्था है। कक्षा की व्यवस्था तथा छात्रों व अध्यापकों के अनुपात की हालत तो और भी दयनीय है। 40 प्रतिशत प्राइमरी स्कूलों में एक कक्षा में तीस से ज़्यादा बच्चे बैठते हैं। पूरे देश में अभी भी कानून के मानक को पूरा करने के लिए 12 लाख अध्यापकों की ज़रूरत है। कानून ने प्राइमरी के लिए 30 बच्चों पर एक और अपर प्राइमरी में 35 बच्चों पर एक अध्यापक उपलब्ध कराने का लक्ष्य तय किया है जो चीन (17 बच्चों पर एक अध्यापक), रूस (18 छात्र पर एक), ब्राज़ील (22 छात्र पर एक) से काफी पीछे है। यह दक्षिण अफ्रीका (31 छात्र पर एक अध्यापक) के क़रीब है। बिहार में ही कानून के मानक को लागू करने के लिए ढाई लाख अतिरिक्त अध्यापकों (44 प्रतिशत अध्यापकों की जगह खाली हैं) की ज़रूरत है। देश में एकल अध्यापक वाले विद्यालय अभी भी हज़ारों की तादाद में मौजूद हैं। योग्य व प्रशिक्षित अध्यापकों तथा बच्चों व शिक्षकों के अनुपात को दुरुस्त किए बगैर शिक्षा की गुणवत्ता की बात करना बेमानी है। शिक्षकों को गैर-शैक्षणिक कार्यों में लगाने से शिक्षा की गरिमा और उसका महत्व भी लगातार कम होता जा रहा है तथा नागरिक समाज की ओर से इसका विरोध होता रहा है। सरकार भी समय-समय पर अपनी नाकामियों को छिपाने के लिए ख़राब शिक्षा के लिए अध्यापकों को जिम्मेदार ठहराती रही है और कहीं-कहीं शिक्षकों ने भी अपने दायित्व को ठीक से निर्वहन नहीं किया है। बच्चों के बढ़ते नामांकन के सरकारी दावों पर भी विभिन्न हलकों में सवाल उठते रहे हैं। सरकारी दावों के मुताबिक 98 प्रतिशत

से अधिक बच्चों के नामांकन के बावजूद कक्षा में छात्रों की लगातार अनुपस्थिति तथा भारी संख्या में हो रहे ड्रापआउट (लगभग 30 प्रतिशत से ज़्यादा) की समस्या में कोई सुधार नहीं दिख रहा है। ज़मीनी सच्चाई और सरकारी आकड़ों में ज़मीन और आसमान का फर्क़ दिखता है। फिर भी आकड़े गवाह हैं कि सौ साल के संघर्षों के बाद हासिल कानून को लागू करने की जो तत्परता केंद्र व राज्य सरकारों को दिखानी थी वह हाल के वर्षों में पूरी तरह गायब रही है।

कानून के अनुसार शिक्षा के दायरे से बाहर छूट गए करोड़ों बच्चों को स्कूल में दाखिला दिलाना, हर बच्चे के पड़ोस में विद्यालय की व्यवस्था करना, हर विद्यालय को आरटीई में दिए गए मानक के आधार पर मान्यता लेने योग्य बनाना तथा मान्यता न होने पर दंड का प्रावधान, पारा शिक्षक की नियुक्ति तथा नान फार्मल स्कूलों पर पाबंदी, कानून में दिए गए मानक के आधार पर आधारभूत संरचना उपलब्ध कराने, योग्य व प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति तथा अप्रशिक्षित व अल्पवेतनभोगी अध्यापकों को प्रशिक्षित करने, फेल-पास प्रणाली से अलग बच्चों के लगातार संपूर्ण मूल्यांकन (सीसीई) आदि जैसे क़दम तत्काल उठाने होंगे साथ ही 75 प्रतिशत अभिभावकों एवं कुल संख्या का पचास प्रतिशत महिलाओं की भागीदारी वाली स्कूल प्रबंधन समितियों का जनतांत्रिक तरीक़े से गठन व संचालन तथा उनके द्वारा स्कूल के लिए विकास योजना बनाने व निगरानी जैसी प्रगतिशील योजनाएं तय की गई हैं। प्राइवेट स्कूलों में कुल बच्चों की संख्या का 25 प्रतिशत पड़ोस की ग़रीब बस्तियों में रह रहे आर्थिक रूप से कमज़ोर बच्चों को दाखिला दिए जाने का प्रावधान किया गया है। प्राइवेट स्कूलों के प्रबंधन ने एकजुट होकर उच्चतम न्यायालय की अदालत में इस प्रावधान को रद्द करने की याचिका दाखिल की थी। मगर उच्चतम न्यायलय ने अप्रैल, 2012 के आदेश के ज़रिये इस याचिका को ख़ारिज कर दिया। हालांकि अदालत ने अनुदानरहित अल्पसंख्यक स्कूलों को कानून के दायरे से बाहर कर दिया। इन अल्पसंख्यक विद्यालयों में पढ़ने वाले बच्चे कानून द्वारा दिए गए अन्य अधिकारों से भी वंचित हो जाएंगे जबकि यह मौलिक अधिकार 6-14 वर्ष की उम्र के सभी बच्चों को हासिल है। संसद ने हाल ही में एक संशोधन कर मदरसों व वैदिक विद्यालयों को भी इसके दायरे से बाहर कर दिया। सरकारी स्कूलों को मज़बूत करने के बजाय कानून को ही कमज़ोर बना देने की तमाम कोशिशें जारी है। अब अनुदान रहित विद्यालयों को मान्यता लेने के लिए खेल के मैदान होने की बाध्यता से मुक्त कर दिया जाएगा। यह कानून तरह तरह के राजनितिक दबावों और समझौतों का शिकार होता जा रहा है। अध्यापक जो स्कूली व्यवस्था में बेहतर बदलाव ला सकते हैं, उन्हें कभी भरोसे में नहीं लिया गया। संवाद के अभाव में अध्यापकों ने शुरू में इस कानून को उन्हें दंडित करने वाला कानून मान लिया था और अपनी स्वायतत्ता को लेकर चिंतित हो गए थे परंतु अब धीरे-धीरे वे समझ रहे हैं की इस कानून को लागू करके ही विद्यालयों के निजीकरण के अभियान को रोका जा सकता है। अध्यापकों में जागरुकता फैलाना और उन्हें इस कानून की सफलता के लिए साथ लाना बहुत ही आवश्यक है।

आप जानते ही हैं लंबे संघर्षों के बाद देश के बच्चों को संविधान में संशोधन के ज़रिये (धारा-21अ) शिक्षा का मौलिक अधिकार हुवा है जबकि 0-6 और 14-18 आयु वर्ष के बच्चे इन अधिकारों से वंचित कर दिए गए। नागरिक समाज ने प्री-प्राइमरी से सेकेंडरी तक शिक्षा को कानूनी अधिकार बनाए जाने की ज़ोरदार आवाज़ उठाई और संविधान संशोधन के दौरान रह गई कमी को कानून के द्वारा दुरुस्त करने की मांग भी उठाई। मगर शिक्षा अधिकार कानून, 2009 ने इसे बाध्यकारी बनाने की जगह राज्य सरकारों की मर्जी पर छोड़ दिया। शिक्षा की प्रारंभिक सीढ़ी को कानूनी दायरे में शामिल किए जाने की प्रबल मांग को देखते हुए अब प्री-प्राइमरी तथा सेकेंडरी शिक्षा को यानी 3-5 और 14-16 आयु वर्ष के बच्चों को भी इस अधिकार क्षेत्र में लाने की चर्चा सरकार ने शुरू कर दी है। यह क़दम निश्चित ही स्वागतयोग्य है परंतु 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए सुरक्षा,पोषण व देखभाल की समुचित व्यवस्था चिंता और चुनौती का विषय बनी हुई है। शिक्षा के लिए संसाधनों की कमी और उनका सही तरीक़े से इस्तेमाल भी एक बड़ी बाधा है। समग्र शिक्षा सुधार के लिए गठित कोठारी कमीशन ने सन 1968 में सकल घरेलू उत्पाद का 6 प्रतिशत शिक्षा पर ख़र्च करने का सुझाव दिया था मगर सरकार ने पैसे का अभाव बताकर कन्नी काट ली। यदि सरकार ने यह सलाह मान भी होती तो आज यह दुर्दिन देखने नहीं पड़ते। अभी भी हम मात्र 3.4 प्रतिशत पर ही अटके हैं। हालांकि यह कानून अपनी कमियों और सीमाओं के लिए विख्यात है। फिर भी देश के अधिकांश लोगों ने बड़ी उम्मीद के साथ इसका स्वागत किया ताकि स्कूली शिक्षा की जर्जर हालत में सुधार लाया जा सके और शिक्षा के बढ़ते निजीकरण व बाज़ारीकरण के ख़तरे को रोका जा सके।

यह सर्वविदित है कि संविधान में सन 1960 (संविधान के लागू होने के दस वर्षों के अंदर) तक 14 वर्ष की आयु तक के सारे बच्चों को सामान एवं गुणवत्तापूर्ण शिक्षा मुहैया करने का वादा किया गया था मगर आज़ादी के 65 वर्षों के बाद भी हम लक्ष्य से कोसों दूर हैं और फिर इस बार संसद द्वारा निर्धारित समय-सीमा के बावजूद यह अधिकार लागू नहीं हो सका तो लोगों का न केवल लोकतांत्रिक संस्थाओं से विश्वास कमज़ोर होता है वरन देश के बच्चों के साथ नाइंसाफी भी जारी है। निजीकरण के पैरोकार सरकार पर लगातार दबाव बढ़ा रहे हैं कि वह उच्च शिक्षा की तरह स्कूली शिक्षा को भी निजी क्षेत्रों के हवाले कर दे। इसके लिए वाउचर सिस्टम, कम बजट वाले स्कूल अथवा सार्वजनिक-निजी साझेदारी (पीपीपी) जैसी व्यवस्था लागू करने का भी विकल्प सुझाया जा रहा है। स्कूली शिक्षा को निजी क्षेत्रों के हवाले करने का कोई भी निर्णय देश के लिए घातक होगा और स्कूली शिक्षा भी खरीद-फरोख्त के लिए बाज़ार के हवाले कर दी जाएगी। ज्ञान पर पूंजी का कब्ज़ा और शिक्षा का मक़सद मात्र बाज़ार की ज़रूरतों को पूरा करना रह जाएगा। शिक्षा के सामाजिक सरोकारों को समाप्त करने की यह गहरी

साज़िश है। शिक्षा को निजी क्षेत्रों के हवाले करने की सारी दलील सरकारी स्कूलों के गिरते स्तर के कारण दी जा रही हैं। अब सवाल उठता है कि सरकार अगर केंद्रीय विद्यालय व नवोदय विद्यालय अच्छे तरीके से चला सकती है और उनके नतीज़े किसी भी प्राइवेट स्कूल के नतीज़ों से बेहतर आते हैं, तो फिर देश के सारे स्कूल क्यों नहीं गुणवत्ता पूर्ण स्कूलों में बदले जा सकते हैं। बिडंबना ही है कि केंद्रीय विद्यालय में सरकार प्रति बच्चा सालाना बीस हज़ार रुपये ख़र्च करती है और गांव के सरकारी स्कूलों में मात्र चार से पांच हज़ार रुपये ख़र्च करती है। सरकारी स्कूलों में गुणवत्ता पूर्ण शिक्षा देने के लिए गुणवत्ता पूर्ण अध्यापकों की ज़रूरत है और उनका लगातार संस्थागत प्रशिक्षण ज़रूरी है। देश के दूरदराज गावों तक फैले लगभग 14 लाख स्कूलों में पढ़ने वाले करोड़ों बच्चों को शिक्षा देने का काम कोई भी निजी घराना कर ही नहीं सकता और फिर मुफ़्त शिक्षा असंभव है। अभी भी स्कूली शिक्षा का अधिकांश निजी क्षेत्र में ही बचा है और 80 प्रतिशत बच्चे सरकारी स्कूलों में ही जा रहे हैं जबकि उच्च शिक्षा अधिकांशतः निजीकृत हो चुकी है। अध्यापकों के प्रशिक्षण का कम तो 90 प्रतिशत से ज़्यादा प्राइवेट संस्थाएं कर रही हैं जहां से प्रशिक्षित 90 प्रतिशत अध्यापक टीईटी परीक्षा में अनुतीर्ण हो रहे हैं। हाल के दिनों में कुछ राज्यों में बच्चों के अभाव में सरकारी स्कूलों का बंद होना, ख़तरे की घंटी है। पढ़ाई के ख़राब स्तर के चलते बच्चे बगल के प्राइवेट स्कूल में जा रहे हैं। अब कई राज्यों में सरकारी स्कूलों को संचालित करने का काम निजी संस्थाओं को दिया जा रहा है जो संस्थागत व्यवस्था को कमज़ोर करने का ख़तरनाक क़दम साबित होगा। कानून के प्रावधानों के तहत गठित स्कूल प्रबंधन कमेटियों का दायित्व संदर्भ में काफी महत्वपूर्ण हो जाता है। मगर उनको प्रशिक्षण और और क्षमता संवर्धन का काम करना होगा। मगर इसे कागज़ों पर ही पूर्ण करने की रिपोर्टें मिल रही हैं। यह रुख शिक्षा व बच्चों के लिए विनाशकारी है क्योंकि इन समितियों को ही स्कूल के विकास की योजनाएं बनानी हैं साथ ही निगरानी और देखभाल भी करनी है। बिहार में अगर समय रहते स्कूल प्रबंधन समितियां गठित कर दी गई होतीं और उन्हें निगरानीं का काम सौंपा गया होता तो सारण जिले में मध्यान्ह भोजन के दौरान विषाक्त भोजन के कारण 23 बच्चों को दर्दनाक मौत से बचाया जा सकता था।

स्कूली शिक्षा को बचाने के लिए अभिभावक, शिक्षक और सामाजिक कार्यकर्ता अगर एक मंच पर आएं तो हालात बदले जा सकते हैं और शिक्षा को एक राजनीतिक मुद्दा बनाया जा सकता है ताकि सरकारें अपनी जिम्मेदारी से मुंह मोड़ न सकें। ❑

(लेखक राइट टू एजुकेशन फोरम के संयोजक हैं।

ई-मेल : amb1857@gmail.com)

योजना अब फेसबुक पर

आपकी लोकप्रिय पत्रिका **'योजना'** अब फेसबुक पर **Yojana Journal** नाम से पृष्ठ के साथ मौजूद है। हमारे फेसबुक पृष्ठ पर आएं और हमारी गतिविधियों तथा आगामी अंकों के बारे में ताज़ी जानकारी प्राप्त करें।

योजना के फेसबुक पेज की शुरुआत से लगभग तीन माह की छोटी-सी अवधि में इसे 8000 से ज्यादा LIKES के लिए पाठकों का धन्यवाद।

हमारा पता : http://www.facebook.com/pages/Yojana-Journal/181785378644304?ref-hl

फेसबुक पर हमसे मिलें, Like करें और अपने बहुमूल्य सुझावों से हमें अवगत कराएं।

IAS **IGNITED MINDS** PCS

दर्शनशास्त्र, ETHICS, G.S., CSAT एवं निबंध के प्रशिक्षण का प्रामाणिक एवं विश्वसनीय संस्थान

एकमात्र विषय (दर्शनशास्त्र) जो पिछले पाँच वर्षों के सभी टॉपर्स का विषय रहा है। एकमात्र शिक्षक (अमित कुमार सिंह) जिन्होंने दर्शनशास्त्र (हिन्दी माध्यम) के सभी टॉपर्स को पढ़ाया है।

दर्शनशास्त्र

द्वारा **अमित कुमार सिंह**

क्यों चुनें दर्शनशास्त्र?

क्योंकि पिछले पाँच वर्षों में हिन्दी माध्यम के सभी टॉपर्स दर्शनशास्त्र से। क्योंकि अब वही विषय आप तैयार कर सकते है जिसका पाठ्यक्रम छोटा हो। अगले वर्ष प्रारंभिक परीक्षा 24 अगस्त तथा मुख्य परीक्षा दिसम्बर में है इसका तात्पर्य है मुख्य परीक्षा की तैयारी में केवल 3½ माह का समय मिलेगा। इसी 3½ माह में आपको सामान्य अध्ययन तथा वैकल्पिक विषय दोनो पढ़ने होंगे। ऐसे में बड़े सिलेबस वाले विषयों को तैयार करना और उनका रिवीजन करना संभव नहीं होगा।

- ✓ केवल UPSC ही नहीं सभी राज्य सेवाओं (उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ में पिछले तीन-चार वर्षों में दर्शनशास्त्र सबसे लोकप्रिय विषय।
- ✓ क्योंकि सामान्य अध्ययन का एक पूरा प्रश्न-पत्र (250 अंक) एथिक्स मूलतः दर्शनशास्त्र विषय का भाग है। (G.S. Paper-IV)
- ✓ क्योंकि दर्शनशास्त्र चुनने पर आपकों निबंध की तैयारी में सबसे अधिक लाभ मिलेगा (पिछले 20 वर्षों में पूछे गए 116 निबंधो में अकेले दर्शनशास्त्र से 22 निबंध)
- ✓ क्योंकि दर्शनशास्त्र में साहित्य जैसा Risk नहीं है जिसे UPSC ने पहले हटा दिया था और आगे भी इनके प्रश्न-पत्रों में व्यापक बदलाव की उम्मीद है। वैसे भी पिछले वर्ष दर्शनशास्त्र की सफलता दर 4.3% जबकि हिन्दी साहित्य की सफलता दर 3.9% रही है। (देखे UPSC वार्षिक रिपोर्ट पेज सं०-108)

सभी विश्वविद्यालयों में एथिक्स दर्शनशास्त्र के एक प्रश्न-पत्र के तौर पर पढ़ाया जाता है। यदि आप गूगल सर्च इंजन पर भी सर्च करेंगे तो आप पायेंगे कि एथिक्स को दर्शनशास्त्र का भाग बताया गया हैं।

QIP मुख्य परीक्षा देने वाले विद्यार्थियों के लिए 5 दिवसीय निःशुल्क कक्षा कार्यक्रम **23 Sep. 11:15 am.**

नया बैच प्रारम्भ **30 SEP. 11:15 am.**

पिछले 5 वर्षों दर्शनशास्त्र (हिन्दी माध्यम) में सर्वोच्च अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थी हमारे संस्थान से

विशाल मलानी	: 378 अंक (2009 बैच)	सुजाता	: 362 अंक (2012 बैच)
कर्मवीर शर्मा	: 371 अंक (2010 बैच)	मनोज कुमार	: 305 अंक (2013 बैच)
अमर बहादुर	: 377 अंक (2011 बैच)		(अब तक ज्ञात)

ETHICS

G.S. Paper-IV

द्वारा **अमित कुमार सिंह**

बैच प्रारम्भ 9 SEP. 8:30 am

एकमात्र संस्थान जिसके शिक्षक को Ethics के पठन–पाठन का 20 वर्ष का अनुभव है जिनका शोध (M. Phil, एवं Ph.D.) भी Ethics पर है और जिन्होनें दिल्ली विश्वविद्यालय में एथिक्स पढ़ाया भी है।

Ethics पढ़ाने वाले संस्थान एवं शिक्षक विद्यार्थियों को क्या इस बात की गारण्टी देंगे कि परीक्षा में उनके पढ़ाये गये पाठ्यक्रम से पूरा प्रश्नपत्र हल होगा? हम ऐसी जवाबदेही लेने के लिए तैयार हैं। क्या दूसरे संस्थान भी ऐसा दावा कर सकते हैं? यदि वे वास्तव में एथिक्स के विशेषज्ञ हैं तो उन्हें ऐसा उत्तरदायित्व लेना चाहिए। हम Ethics पर उत्तरदायित्व लेने को तैयार हैं क्योंकि हम रातों–रात या पिछले एक माह में Ethics पढ़कर Ethics के विशेषज्ञ नहीं बने हैं।

एथिक्स किस विषय का भाग है इसकी जानकारी कोचिंग संस्थानों से नही बल्कि Google पर Ethics को सर्च करके खुद कीजिये।

एथिक्स पर कक्षा एवं टेस्ट सीरीज प्रारम्भ करने वाला पहला संस्थान

CSAT प्रारम्भ

(हिन्दी/Eng.)

द्वारा

नागेन्द्र प्रताप एवं अमित कुमार सिंह के निर्देशन में

अभ्यर्थी हमारे संस्थान में प्रशिक्षण प्राप्त कर सीसैट में 150+ अंक सुनिश्चित करें

सामान्य अध्ययन

सामान्य अध्ययन के नये जुड़े खण्डों पर (एथिक्स, सामाजिक-न्याय, दार्शनिक विचारधारायें, विश्व इतिहास एवं कला संस्कृति) पर विशेष बल देने वाला कार्यक्रम

ऐसे विद्यार्थी जो तथाकथित प्रतिष्ठित संस्थानों से पढ़ चुके हैं तथा गुणवत्ता को समझने की क्षमता रखते हैं के लिए विशेष रूप से संरचित कार्यक्रम

TEST SERIES प्रारम्भ 15 SEP. 11 am.

दर्शनशास्त्र ETHICS निबन्ध

A-2, 1st Floor, Comm. Comp., Near Mukherjee Nagar, Delhi-09
PH. 9540131314, 011-27654704

H-1, First Floor, Madho Kunj, Katra, Allahabad
Ph. 9389376518, 9793022444

YH-123/2013

देशज भाषाओं की संकटपूर्ण स्थिति

● जी. एन. देवी

किसी समुदाय को एक भाषा का सृजन करने में सैकड़ों वर्ष लग जाते हैं। मानव समुदायों द्वारा सृजित सभी भाषाएं सामूहिक सांस्कृतिक विरासत की एक हिस्सा है। इसीलिए यह हमारी सामूहिक जिम्मेदारी है कि ये भाषाएं हमारे ज़माने में खोने न पाएं

ऑस्ट्रेलिया में उन्हें अबोरिजिन्स कहा जाता है। न्यूजीलैंड में वे माओरी बोले जाते हैं। कनाडा में उन्हें फर्स्ट नेशंस कहा जाता है। अमरीका में वे इंडिजिनॅस नाम से मशहूर हैं। भारत में उन्हें जनजाति बोला जाता है। नृतत्वविज्ञान उन्हें कबीला कहता है। अनेक देशों की प्रसाशन की भाषा में वे अनुसूचित समुदाय कहे जाते हैं। मानव अधिकारों पर चर्चा करते हुए वे देसी लोग के रूप में पहचाने जाते हैं। एशिया के सक्रिय कार्यकर्ता उन्हें आदिवासी कहते हैं। विभिन्न शब्दों के द्वारा पुकारे जाने वाले ये लोग विभिन्न भौगोलिक इलाक़ों में रहते हैं और उनका कोई एक और सर्वसमावेशी नाम नहीं है। अगर कहा जाए कि ये वे लोग हैं, जो विभिन्न कालखंडों में उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, आधुनिकता अथवा वैश्वीकरण के शिकार रहे हैं, तो यह अतिश्योक्ति न होगी। अगर उनके जातीय, सांस्कृतिक और भाषाई गुणों पर ध्यान दें, तो पाएंगे कि उनमें इतनी विभिन्नता है कि उन्हें एक ही मानव समूह मानना मुश्किल हो जाएगा। किसी एक शब्द से उन्हें पुकारना उपयुक्त नहीं होगा। ऐसा करना बहुत ज़्यादा सादगी बरतनी होगी कि उन्हें किसी कालखंड में विभिन्न शिकार समूहों का रूप दिया जाए। अगर हम उनके लिए कोई एक शब्द स्वीकार कर भी लें, तो उसमें अनेक शर्तें लगानी पड़ेगी और अगर हर समुदाय के विभिन्नतापूर्ण इतिहास पर ध्यान दें, तो उसमें कई तरह के विरोधाभास जान पड़ेंगे। हालांकि इस तरह के समाजिक शब्द अकसर कुछ प्रकार की नाटकीयता दर्शाते हैं, लेकिन अगर उनकी विशेषताओं का विश्लेषण करें तो उसके लिए इस्तेमाल किया जाने वाला शब्द कल्पनाशील विचारों वाला होगा और उसे चुनौती दी जा सकेगी।

यही कारण है कि 1982 में जब संयुक्त राष्ट्र ने इन समुदायों के बारे में सिफ़ारिशें करने के लिए एक समूह गठित किया तो अनेक प्रकार की कठिनाइयां सामने आईं। शब्द 'देसी' के लिए चार मापदंड सामने आए। ये हैं- (क) पहले से मौजूद लोग। (ख) वंचित और वर्चस्व के अधीन जनसंख्या। (ग) अल्पसंख्यक अथवा सांस्कृतिक रूप से अलग-थलग लोग। (घ) ऐसे लोग जो अपने को मूल निवासी के रूप में मानते हैं। इनमें से हर मापदंड में प्रतिवाद की गुंजाइश है।

अतः संयुक्त राष्ट्र ने सितंबर 2007 में देसी लोगों की परिभाषा घोषित करते हुए जो परिभाषा दी उस पर एक राय नहीं थी संयुक्त राष्ट्र में जिन देशों ने इस प्रस्ताव के ख़िलाफ़ मतदान किया उनमें ऑस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड अमरीका और कनाडा शामिल थे।

उक्त मुश्किलों के बावजूद बाहरी लोगों ने इन लोगों के बारे में जो राय ज़ाहिर की वह वंचित, अल्पसंख्यक और देसी जैसे लक्षणों से युक्त थी। अनेक देशों में देसी लोगों को वंचना और दमन का सामना करना पड़ता है। उन्हें प्राकृतिक संसाधनों से वंचित कर दिया जाता है। उन्हें अच्छी गुणवत्ता वाली शिक्षा, स्वास्थ्यचर्या और वे सुविधाएं नहीं मिलतीं जो अन्य नागरिकों को उपलब्ध हैं और उन्हें आधुनिकता के लिए विकास परियोजना में समस्या समझा जाता है। यह राय समाजविज्ञानी शिव विश्वनाथन ने दी है।

जनजातियों की स्थिति के बारे में अन्य जो समस्याएं बताई जाती है वे भी महत्वपूर्ण हैं। नियमानुसार उन्हें रूसी अथवा रोमांटिक रिएक्शन के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है। इसके पीछे जो भी मानसिकता अथवा विचारधारा हो। नृतत्वविज्ञान में तर्क़ दिया जाता है कि कोई भी आदिवासी समूह तभी बना

यह आलेख लेखक द्वारा अक्तूबर 2008 में यूनेस्को कार्यकारी बोर्ड की बैठक में दिए गए व्याख्यान पर आधारित हैं।

रह सकता है जब उसे 'अन्य वर्ग' में रखा जाए। यह ऐसी बात है जो अंतर को ख़त्म ही नहीं करती बल्कि उन्हें समाप्त कर देती है (विश्वनाथन, 2008)।

पिछले कुछ समुदायों का इतिहास उन्हें जबरन खदेड़ने, एक भूभाग में सीमित करने, संसाधनों से वंचित करने, उनके ख़िलाफ़ हिंसा भड़काने और सभी राष्ट्र-राज्यों में जवाबी हिंसा की कार्रवाइयां करने से भरा पड़ा है। अगर विकास के इन मापदंडों पर ध्यान दें, तो ये समुदाय हमेशा ही सबसे अंत में रखे जाते हैं। इन्हें घुमंतू अथवा चलता-फिरते समुदाय कहा जाता है इन समुदायों को बने रहने के लिए भारी मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। यह बात किसी चमत्कार से कम नहीं है कि उनकी भाषाएं बरक़रार है और उनके ज़रिये दुनिया की भाषाई विविधता में योगदान मिल रहा है। लेकिन कुछ भी हो, अगर यही हालत कायम रही तो इन वंचित और लुप्तप्राय लोगों की भाषा को समाप्त होने का ख़तरा है। ऐसा जान पड़ता है कि उन्हें ऐसी हालत में अफेशिया कहा जाएगा जिसका मतलब है बोलने कि क्षमता समाप्त हो जाना और लगता है यह स्थिति इन समुदायों की नियति बन रही है।

यह तय करना बहुत मुश्किल काम है कि वह कौन-सी भाषाएं हैं जो अफेशिया के करीब पहुंच गई है और वे उस दिशा में जा रहीं है जिधर जाने मात्र से ही भाषाएं ख़त्म होने की प्रक्रिया में शामिल हो जाती हैं। ऐसा कहना अनुचित नहीं होगा कि इस समय भाषाओं के बारे में जो आंकड़े उपलब्ध हैं, वे इस उद्देश्य से काफी नहीं है।

भारत में सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने एक भाषाई संकलन तैयार किया जिसका नाम लिंग्विस्टक सर्वे ऑफ इंडिया (1903-1923) रखा गया इसमें उन्नीसवीं शताब्दी में इकट्ठी की गई 179 भाषाओं और 544 बोलियों के बारे में सामग्री है। 1921 की जनगणना में रिपोर्ट दी गई है कि उस समय 188 भाषाएं और 49 बोलियां बोली जाति थी। 1961 की जनगणना से मालूम पड़ता है कि कुल 1652 मातृ भाषाएं बोली जाती थी जिनमें से 184 मातृ भाषाओं के बोलने वाले समूहों की संख्या 10,000 से ज़्यादा थी। इनमें से भी 400 मातृ भाषाओं का ग्रियर्सन के सर्वे में उल्लेख है जबकि 527 भाषाओं की सूची अवर्गीकृत शीर्षक में दी गई है। इसके अलावा 103 मातृ भाषाएं विदेशी शीर्षक सूची में शामिल की गई हैं। 1951 की जनगणना में 63 ऐसी विदेशी भाषाओं का उल्लेख किया गया है जो भारत में बोली जाती थी। इससे ज़ाहिर है कि सिर्फ़ एक दशक के अंतराल में 50 नयी विदेशी भाषाओं का आविर्भाव हुआ।

1971 में जो भाषा संबंधी आंकड़े इकट्ठे किए गए उनसे जनगणना को दो वर्गों में विभाजित किया गया। पहली थी संविधान की आठवीं अनुसूची में सरकारी तौर पर सूचीबद्ध भाषाएं और दूसरा वर्ग था उन भाषाओं का जिनके बोलने वाले लोगों की संख्या 10,000 से कम थी। इन लोगों को अन्य भाषाओं के बोलने वाले लोगों के सूची में डाल दिया गया बाद की जनगणनाओं में भी यह परिपाटी चलती रही। भाषाविद उदय नारायण सिंह ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है:

भारतीय वर्गों की समस्या यह है कि 1961 की जनगणना में इतनी मातृ भाषाओं का उल्लेख कर दिया गया है, और यह बात अवर्गीकृत भाषाओं के बारे में ज़्यादा सच है कि यह सोचना पड़ेगा की आखिरकार वे कैसे बची हुई है। इनका बचे रहना एक बड़ा काम है। जिन भाषाओं के बोलने वाले की संख्या 1,000 से ज़्यादा है उनके बरक़रार रहने की संभावना अधिक है। कारण यह कि उनमें ये 10 अवर्गीकृत भाषाएं शामिल हैं- आदि भाषा (4,807) बाकेरवाली (5,941), बेलदारी (2,702), जटापु (19,467), कजरी (1,810), राज (1,342), सरोदी (1,354), सोहाली (1,576), सूबा (1,257), और तिर्मुली (1,000)। कुछ भाषाएं इनसे बेहतर हालत में हैं इनके नाम हैं बारे (909), कोलहाटी (952), खासल (778), इनकारी (732), और उचई (768) लेकिन 47 अन्य भाषाएं भी हैं जो उतनी अच्छी हालत में नहीं हैं। इसमें कोई शक नहीं कि कुछ प्रारंभिक सत्यापन ये नाम जारी करने से पहले जनगणना अधिकारियों द्वारा किए गए लेकिन अब भी शायद 263 भाषाएं ऐसी हैं जिन्हें बोलने वालों की संख्या 5 से कम है अगर इन्हें सत्यापित करने में कुछ मुश्किलें हैं तो उन्हें संभालने में और भी ज़्यादा मुश्किलों का सामना करना होगा (सिंह 2006)।

इस बात को ध्यान में रखते हुए कि उन देशों में जनगणना करना कितना मुश्किल काम होगा जहां बड़ी संख्या में घुमंतू आबादी रहती है और यह भी देखना होगा कि जहां भी जनगणना की जाती है वहां के लोग कितने साक्षर हैं। इस बात पर कोई ताज्जुब नहीं होना चाहिए कि इस सिलसिले में जो भी आंकड़े इकट्ठे किए जाते हैं वे निश्चित रूप से पर्याप्त नहीं होते। यह भी आश्चर्यजनक बात है कि 310 भाषाएं ऐसी थीं जिनके बोलने वालों की संख्या 1,000 से कम थीं और जिस समय यह संख्या सामने आई तब इनमें 263 ऐसी भाषाएं शामिल थी जिनके बोलने वाले की संख्या 5 थी। 47 भाषाओं के बोलने वाले 1,000 से कम थे इस तरह से उन भाषाओं की संख्या 1,652 बैठती है जो लुप्त होने के नज़दीक है। 1961 की जनगणना में इन्हें मातृभाषा वर्ग मे डाला गया है। इसका क्या तरीक़ा अपनाया गया था यह चर्चा का विषय है और बाद की जनगणनाओं में वही तरीक़ा मान लिया गया। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि भारत में जितनी भाषाएं बोली जाती हैं उनका 5वां भाग लुप्त होने के क़गार पर है। लेकिन, सर्वेक्षण के दौरान गणना करने वालों ने जो तरीक़े अपनाए उनमें इन संख्याओं के और छूट जाने की संभावना जान पड़ती है। डर इस बात का है कि ऐसी हालत सिर्फ़ भारत में ही नहीं है। यह एक विश्वव्यापी समस्या है। देश में भाषाओं की संख्या में गिरावट के और भी कारक है। इनके लिए किसी भी राष्ट्र-राज्य की आधुनिकता जिम्मेदार है।

भारत में भाषाओं का लोप सिर्फ़ मामूली मातृभाषाओं और अवर्गीकृत बोलियों के रूप में नही हो रहा है बल्कि ऐसी बड़ी भाषाएं भी लुप्त हो रही हैं जिनकी साहित्यिक परंपरा रही है और जिसमें काफी बड़ा लिखित साहित्य मौज़ूद है। मराठी, गुजराती, कन्नड और उड़िया जैसी सशक्त मातृभाषाएं बोलने वाले समुदाय की नयी पीढ़ी का अपनी भाषा के लिखित साहित्य से बहुत कम संपर्क है। हालांकि ये बच्चे अपनी भाषाएं बोल लेते हैं, ऐसी हालत में ये मान लेना अनुचित नहीं होगा कि वैश्वीकृत विकास के इस जमाने में बहुत बड़ी संख्या में दुनिया के लोगों को विकास की भारी क़ीमत चुकानी पड़ रही है और उन्हें अपनी भाषाई परंपरा से वंचित होना पड़ रहा

है। इस स्थिति को आंशिक रूप से भाषाई अधिग्रहण कहा जा सकता है जिसमें पूरी तरह से एक साक्षर व्यक्ति उच्च शिक्षा प्राप्त है, अपनी मातृभाषा के अलावा किसी अन्य भाषा में लिख, पढ़ और बोल सकता है लेकिन उस भाषा में उतना निष्णात नहीं है जो उसकी मातृभाषा है।

भाषाओं की गिरावट के इस माहौल पर विचार करते हुए अगर हम यह जानने की कोशिश करें कि हाल ही में भारत की कितनी भाषाएं समाप्त हो गई हैं अथवा फिर कितनी भाषाएं समाप्त होने के निकट हैं या कितनी संकट के क्षेत्र में प्रवेश कर चुकी हैं तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि भारत की कितनी भाषाएं समाप्तप्राय: है अथवा इस समय जीवित भारतीय भाषाओं की संख्या कितनी है। यूनेस्को द्वारा तैयार एक सूची में इनके 197 नाम शामिल किए गए हैं ये हैं:

अटोंग, आदि, अहोम, अइमोल, अइटोन, अका, अनल, ऑद्रा, अंगामी, अंगिका, अवो, अपातानी, असुर, बदागा, बगाती, बालॅटी, बंगानी, बंगनी, बउम, बेल्लारी, भद्रवाही, भालेसी, भरमौरी, भूमजी, बिराती, बरिहोर, विस्नुप्रिया, बोडो, बोकरबोरी, ब्रोक्षसत, बुनान, बयांग्सी, चंबीयाली, चांग, चोक्र, चुराही, कुओना, मेम्बा, डक्पा, डरमा, डेआरी, दिमासा, गड़ाबा, गालो, गंगते, गढ़वाली, गेता, गोंडी, गोरूम, ग्रेटअंडमानी, गुतोब, हेंडूरी, हिलमिरी, हमार, हो, हांगखोल, इंदू, इरूला, जाड, जांगसूम, जारवा, जौनसारी, जुआंग, कबूई, कछारी, कानासी, कांगली, करबी, खंबा, खांपती, खरीया, खसाली, खेझा, खिंयामंगन, खोइराओ, खोवा, किन्नौरी, कोच, कोडा, कोडागू, कोइरेंग, कोकबोरोक, कोलामी, कोम, कोंडा, कोन्याक, कोरागा, कोरकु, कोरो, कोरवा, कोटा, कुई, कुरूई, कुमाउनी, कुंडल, साही, कुरू, कुरुबा, कुरुक्स (भारत), कुबी, लद्दाखी, लामगंग, लमोंगसी, अंगरोंग, लेण्चा, ल्होटा, लियांग्मई, लिंबु, लिस्पा, लोरु, महासवी, माल्टो, मनचाड, मंडा, मंडियाली, माओ, मारा, मारम, मरींग, मेच, मेर्थाइ, मिजी, मिजू, मिलंग, मियोंग, मिसिंग, मिजो, मोडतुओ, मेंबा, मोयोन, मुडारी, मोओट, म्जीम, ना, नाहाली, नायकी, निहाली, नोक्ते, रुंगमेई, न्यीसी, ओंगे, पदम, पादरी, पैते, पंग्वाली, पार्जी, पासी, पैंगो, फोम, पोचुनी, पूरीक, पूरम, राभा, रंगकास, रेमो, रेंगमा, रोगंपो, रूगा, स्नेन्यो, संगताम, सेगंमाई, संताली, सेरकुकपेन, सेरपा, शोमपेन, सिमी, सिंगफू, सिरमोडी, सोरा, स्पीति, सुलुंग, तावींग, ताईनोरा, ताईफाके, ताईरोंग, ताकालानिलांग, तामाग, तंगम, तंगखल, तंगसा, ताराव, तारौग, थाडों, टिनान, तिवा, टोडा, तोल्चा, टोटो, सांगला, तुलु, टुरी, बांचो, यिमचुंगरू, जैवा, जंगस्कारी, जेमे।

इस सूची को प्रकाशित किया जा चुका और इसकी तीखी आलोचना की जा चुकी है क्योंकि इसमे तथ्यात्मक गलतियां हैं। उदाहरण के लिए मितेई अथवा मणिपुरी भारत के संविधान की आठवीं सूची में शामिल भाषा है और मणिपुर की राज भाषा को भी। इसी तरह से मिजो मिज़ोरम की सबसे महत्वपूर्ण भाषा है सूची में शामिल किया गया है। गढ़वाली, गोंडी और बोडो भाषाएं भी हाल के वर्षों में उत्थान देख चुकी है और यूनेस्को की सूची में शामिल कर ली गई हैं। द पीपुल्स लिंग्विस्टिक सर्वे कहा जाने वाले इस सर्वेक्षण में पाया गया है कि इसमे जो भाषाएं शामिल की गई हैं उनमें से अधिकांश किसी न किसी समुदाय में बोली जाती है अथवा कोई न कोई समुदाय उन भाषाओं का प्रतिनिधित्व करता है और इन समुदायों के सदस्य यह मानने को तैयार नहीं हैं कि ये भाषाएं समाप्त हो चुकी हैं।

यह एक तथ्य है कि दुनिया की भाषाएं ऐसे दौर से गुज़र रही है जहां तेज़ गिरावट दिखाई दे रही है और संभवत: भारत जैसे देश में किसी जिंदा भाषा में मौजूद ज्ञान भंडार इतना हो सकता है कि अगर भाषा समाप्त हो गई तो नुक़सान होगा। तर्क़ दिया जा सकता है कि इसकी जिम्मेदारी उस समुदाय की है जिसने अपनी भाषा को ख़तरनाक क्षेत्र में छोड़ा और इसके कारण होने वाला नुक़सान स्पेन, अमरीका, अर्जेंटिना अथवा ऑस्ट्रेलिया में कोई भाषा लुप्त हो जाने के कारण होने वाले नुक़सान से अधिक है। इन टिप्पणियों के जबाब में यह बताना जरूरी है की भारत में भाषाओं की संख्या बहुत ज़्यादा नहीं है और इनका अनुमान भी अंतिम तौर पर नहीं लगाया गया। पिछले 50 वर्षों के दौरान भारतीय भाषाओं की एक प्राधिकृत सूची तैयार करने की कोशिशें की गईं लेकिन अभी तक कोई ऐसी संख्या निर्धारित नहीं की गई जो जिंदा भारतीय भाषाओं की संख्या हो। ऐसी हालत में मैं भारत को भारतीय भाषाओं का कब्रिस्तान नहीं कह सकता लेकिन इसे भाषा वन कहा जा सकता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भाषा के आधार पर राज्यों का पुनर्गठन किया गया। उस समय सिर्फ़ उन्हीं भाषाओं को भाषा माना गया जिनकी कोई लिपि मौजूद थी। जिन भाषाओं की लिपि नही थीं उनमें लिखित साहित्य भी नहीं था। अत: उन्हें राज्य के गठन का आधार नहीं माना गया। स्कूल और कॉलेज राज्य भाषाओं के लिए खोले गए। जिन भाषाओं की अपने लिपि नहीं थी उनमें भले ही भारी मात्रा में मौखिक रूप से ज्ञान भंडार मौजूद था लेकिन उन्हें भाषा नहीं माना गया लेकिन संविधान की धारा 347 में उन्हें संरक्षण देने की गारंटी शामिल की गई है इसमें कहा गया है कि अगर मांग की गई तो राष्ट्रपति, अगर वे संतुष्ट हों, कि आबादी का एक हिस्सा चाहता है कि उनके द्वारा बोली जाने वाली किसी भाषा को राज्य मान्यता प्रदान करें, तो वह निर्देश दे सकते हैं कि उस भाषा को भी सरकारी तौर पर मान्यता प्रदान की जाए, भले ही पूरे राज्य में अथवा उसके किसी भाग तक ही उसका इस्तेमाल सीमित रखा जाए। यह बात राष्ट्रपति अपने आदेश के जरिये विर्निदिष्ट करेंगे।

किसी भाषा के समाप्त होने, उसकी जगह दूसरी भाषाओं के लेने अथवा भाषाई विरासत में गिरावट की जिम्मेदारी किसी पर नहीं डाली जा सकती और इसका दायित्व सिर्फ़ संरचना संबंधी कारकों पर होता है। ऐसा लगता है कि इस सिलसिले में कुछ और बलवान कारक प्रभावी हैं और यह अंतर्राष्ट्रीय घटनाक्रम पूरी दुनिया को तेज़ी से वैश्वीकृत कर रहा है यह बात वर्तमान में भारत में और अन्य एशियाई और अफ्रीकी देशों में देखी जा सकती है। वहां पर लोगों में अंग्रेज़ी, फ्रेंच अथवा स्पेनिश भाषा के माध्यम से अपने बच्चों को शिक्षा दिलाने की उत्सुकता होती है। कारण यह कि उन्हें उम्मीद होती है कि अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा प्राप्त कर के उनके बच्चे अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में कुशल श्रमिक के रूप में काम पा सकेंगे। इस इच्छा के चलते इन देशों में शिक्षा का तरीक़ा प्रभावित हुआ है। भले ही, इस अंतर्राष्ट्रीय भाषा का प्रभाव पिछली सदी में न दिखाई पड़ा हो।

बच्चों को कम से कम प्राइमरी स्कूल स्तर तक अपनी मातृभाषा में शिक्षा दिलाने के पक्ष में तर्क़ भले ही स्वस्थ विचार हो लेकिन इसके पीछे का तर्क़ विवादस्पद हो सकता है। कुछ भी हो, इसका विपरीत तर्क़ यह है कि जो बच्चे मातृभाषा में शिक्षा नहीं पाते उनका बौद्धिक विकास नहीं हो पाता। इस तर्क़ पर विचार करना होगा। अगर साहित्य को भाषा का सबसे जटिल इस्तेमाल माना जाए, तो कोई भी यही कहेगा की जो बच्चे अपनी भाषा में शिक्षा नहीं पाते वे पूरी तरह से अपने समाज की बातें नही समझ पाएंगे। अपनी भाषा में साहित्य रचना करना उनके लिए मुश्किल होगा लेकिन इस संबंध में ऐतिहासिक साक्ष्यों से पता चलता है कि ऐसी बात सच नहीं है। दुनिया में अनेक ऐसे लेखक हुए हैं जिन्हें अपनी भाषा में कोई स्कूली शिक्षा नहीं मिली लेकिन उन्होंने अपनी भाषा में रचनात्मक लेखन किया। शेक्सपियर की स्कूली शिक्षा लैटिन में हुई थीं। इसी तरह मिल्टन भी लैटिन स्कूल में पढ़े थे। दांते की पढ़ाई इतालवी भाषा में नहीं हुई। भले ही वाल्मिकि और कालिदास के निजी जीवन के बारे में ज़्यादा मालूम नहीं है, उन्हें संस्कृत में शिक्षा नहीं मिली थी। ज्यां गेनेत के फ्रेंच स्कूल जाने के बारे में कोई सूचना नहीं है। इसी तरह से विलियम बटलर यीटस के गायलिक स्कूल जाने के बारे में कुछ पता नहीं। चौसर के समय में अंग्रेज बच्चों को अंग्रेज़ी की जगह फ्रेंच पढ़ना पड़ता था। इंग्लैंड में चार्टिस्ट मूवमेंट तक अंग्रेज़ी स्कूलों में एक विषय के रूप में नहीं पढ़ाई जाती थी।

19वीं शताब्दी के शुरुआती वर्षों के दौरान जब भारत में सामाजिक सुधारों की बात चल रहीं थी तो बंगाल के बुद्धिजीवियों में इस बत पर बहस चल रही थी क्या शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी होना चाहिए। उस समय वहां पर तैनात एक अंग्रेज़ अफसर माउंटस्टुअर्ट एलफिंस्टन की राय थी की भारतीय भाषाओं में स्कूली शिक्षा होनी चाहिए लेकिन यह तर्क़ 1835 में तब ख़त्म हो गया जब लॉर्ड मैकाले ने सिफ़ारिश की कि भारत में शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी बनाई जानी चाहिए। ध्यान देने की बात है कि तब से भारतीय भाषाओं में काफी हद तक रचनात्मकता बढ़ी। इस प्रकार का तर्क़ देने का उद्देश्य यह नही है कि इन बातों में कोई दम नहीं है कि मातृभाषा नये छात्रों के लिए शिक्षा का सर्वश्रेठ माध्यम है। मेरा कहने का मतलब सिर्फ़ यह है कि मातृ भाषा को शिक्षा का माध्यम नहीं बनाया जाएगा तो मानवता की रचनात्मकता समाप्त हो सकती है।

जब भी कोई भाषिक समुदाय यह विश्वास करने लगता है कि आगे बढ़ने का भरोसेमंद तरीका सिर्फ़ यह है कि सिर्फ़ अन्य भाषा में स्कूली शिक्षा होनी चाहिए और वह समुदाय नयी भाषा को स्वीकार कर लेता है तो यह बात महत्वपूर्ण हो जाती है कि उसने समसामयिक विश्व में भाषाओं की विरासत कम होने की समस्या समझ ली है। ऐसी हालत में राजनीति और अर्थशास्त्र संबंधी विश्लेषणों पर ध्यान देना होगा। जो भी समुदाय हाशिये पर हैं और जो सांस्कृतिक संदर्भ में अल्पसंख्यक माने जा रहें हैं उनकी इस संबंध में आवाज़ पहले ही दब चुकी है।

भारत में शाश्वत शिक्षा हर माता-पिता की जिम्मेदारी और बच्चों का अधिकार है। राज्य द्वारा प्रायोजित शिक्षा नि:शुल्क दी जाती है और सभी को उपलब्ध है। मध्याह्न भोजन के ज़रिये बच्चों को खाद्य सुरक्षा दी जाती है। संघ सरकार और राज्य सरकारें प्राइमरी शिक्षा को अपनी बुनियादी जिम्मेदारी मानती हैं। बालश्रम को सरकारी तौर पर गौरकानूनी करार दिया जा चुका है। अनेक राज्यों में महिलाओं के लिए उच्च शिक्षा भी नि:शुल्क कर दी गई है। लगभग सभी राज्यों में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजातियों तथा पिछड़े वर्गों के बच्चों के लिए शिक्षण संस्थानों में आरक्षण का प्रावधान है।

भारतीय राज्य 50 भारतीय भाषाओं में प्राइमरी शिक्षण कार्यक्रम चलाते हैं। इन स्कूलों में कई विदेशी भाषाएं भी पढ़ाई जाती हैं। वयस्क क्षिक्षा और अनौपचारिक शिक्षा को भी प्रोत्साहित किया जाता है। सभी सूचीबद्ध भाषाओं को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से चलाए जा रहे शिक्षा कार्यक्रमों में संवैधानिक गारंटी अंतर्निहित होती है। भारतीय भाषाओं के केंद्रीय संस्थान को ऐसी भाषाओं में शिक्षा सामग्री तैयार करने की जिम्मेदारी सौंपी गई है।

इन प्रयासों के बावजूद अनेक वंचित भाषाएं है जिनमें उन्हें बरक़रार रखने के लिए शिक्षा सामग्री तैयार नहीं की जा रही है। बड़ी संख्या में बच्चे ऐसे स्कूलों में जाते हैं जहां उनसे अधिक फीस सिर्फ़ इसलिए वसूली जाती है कि उन स्कूलों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि ऐसे छात्रों को उन 45,000 शिक्षा संस्थानों में दाखिला लेने के काबिल बनाया जाता है जहां 60 प्रतिशत से ज़्यादा समय सूचना प्रौद्योगिकी को दिया जाता है। जब भी कोई छात्र भारतीय भाषा में शिक्षा देने वाले स्कूलों में दाखिला लेता है, उसे कुछ सामाजिक असुविधाओं का सामना करना पड़ता है। इन परिस्थितियों के अंतर्गत किसी ऐसी भाषा के संरक्षण की बात, जिसे संरक्षण की ज़रूरत है बेमानी हो जाती है।

भारत में एक नयी प्रवृत्ति चल पड़ी है। हाल के वर्षों में जनजातीय लोगों ने लेखन शुरू कर दिया है। अनेक जनजातीय भाषाओं की अब अपनी लिपि है अथवा उन्होंने राज्य की लिपि अपना ली हैं। चार दशक पहले जब दलित साहित्य ने राष्ट्र का ध्यान आकर्षित करना शुरू किया, उस समय यह आम बात थी कि जनजातीय लेखक भी दलित आंदोलन के भाग बन गए। उदाहरण के लिए मराठी में आत्माराम राठौड़, लक्ष्मण माणे, लक्ष्मण गायकवाड़ ये सभी जनजातीय समुदायों से निकले और इन्हें दलित लेखक माना गया। उस समय पूर्वोतर राज्य अस्तित्व में नहीं थे जब बेरीयर एल्विन ने अपना विशाल संग्रह प्रस्तुत किया लेकिन उस समय तक दलित रचनात्मकता अस्तित्व में नहीं आई थी। पिछले 20 वर्षों में अनेक आवाज़ें उठीं और रचनाओं का अस्तित्व महसूस किया गया। इस प्रकार से केरल के कोचेरेती और उत्तर के अल्मा कबूतरी ने अपने पाठकों को अपनी रचनाओं के ज़रिये चकित कर दिया। एल खियांग्ते ने मिजो साहित्य की रचना की। डेस्मंड खरमाप्लांग ने खासी में साहित्य रचा। गोविंद चातक के रचनाओं के ज़रिये गढ़वाली साहित्य के अंग्रेज़ी और हिंदी अनुवाद प्रकाशित हुए। यह तब संभव हुआ जब पेंटेड वर्ड्स (पेंगुइन इंडिया, 2002) में जनजातीय साहित्य का अंग्रेज़ी अनुवाद प्रस्तुत किया गया।

पिछले दो दशकों के दौरान यह देखा गया कि जनजातीय साहित्य सिर्फ़ लोकगीतों और लोककथाओं के रूप में ही प्रस्तुत नहीं किया जा रहा है। अब उसमें उपन्यास और नाटक जैसी विधाओं में लिखा जा रहा है। अहमदाबाद

में दक्षिण बजरंगी का बुधान थियेटर रोचक ड्रामा प्रस्तुत कर रहा है। इनका स्वरूप और विषयवस्तु समसामयिक है। छत्तीसगढ़ी में *लोकाक्षर* और *ढोल* जैसी छोटी पत्रिकाएं छपने लगी हैं जिनमें जनजातीय लेखकों और कवियों की रचनाएं प्रकाशित होती है। इस आंदोलन में रमणिका गुप्ता के आम आदमी आंदोलन ने महत्वपूर्ण योगदान दिया है। साहित्यक सम्मेलनों में दलित लेखकों को एक मंच प्रदान किया जा रहा है। इस प्रकार के सम्मेलन झारखंड के रांची और गुजरात के डांडी में अक्सर आयोजित किए जा रहे है।

जनजातियों के बीच काम करने वाले सक्रिय कार्यक्रताओं में भी अब देशभर में अब यह समझ बढ़ी है कि जब तक आदिवासी भाषाओं और साहित्य को सुरक्षित नहीं किया जाएगा तब तक आदिवासी पहचान और संस्कृति ख़तरे में रहेगी। हर महाद्वीप की अपनी कहानियां है। उनके औपनिवेशिक अनुभव हैं। उनके अपने समकालीन संघर्ष की कथाएं है और सम्मानजनक राष्ट्रीय साहित्य की आवाज़ उनके संघर्षों में उभर रही है।

यह महत्वपूर्ण है कि भाषाओं की संरक्षा बहुत अहम समझी जानी चाहिए और यह स्मारकों के संरक्षण के काम से अलग है। जैसा कि भाषा विज्ञान के अध्येता जानते हैं कि हर भाषा के साथ सामाजिक व्यवस्था जुड़ी होती है। उन पर सामाजिक विकास का प्रभाव पड़ता है। एक सामाजिक व्यवस्था के रूप में कोई भाषा स्थित होती है। उसके शब्दकोष और व्याकरण तैयार किए जाने चाहिए और इस प्रकार से उस भाषा को अन्य लिपियों में उतारा जाना चाहिए लेकिन आवश्यक रूप से भाषा अगर मानवीय चेतना से बाहर हो जाती है, तो उसका कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। इसलिए किसी भी भाषा को समुदाय से एकदम पृथक नहीं किया जा सकता। यही कारण है कि किसी भाषा को संरक्षित करने के बाद हमें उस समुदाय को भी संरक्षित करना होता है जहां पर वह भाषा बोली जाती है।

किसी समुदाय की चेतना और भाषा के बीच वह बात आती है जिसे वैश्विक दृष्टिकोण कहा जाता है भाषा के संरक्षण में इसीलिए उसके बोलने वाले लोगों के विश्व दृष्टिकोण का सम्मान दिया जाता है। अगर किसी समुदाय को विश्वास है कि मानव भाग्य के विधाता धरती पर ही मौजूद हैं, तो उसे यह कहकर आघात नहीं पहुंचाया जा सकता कि वे यहां नहीं हैं। किसी समुदाय की भाषा तब तक सुरक्षित नही रखी जा सकती जब तक हम उस समुदाय के राजनीतिक संकल्पना में शामिल न हों। ऐसी हालत में उस समुदाय के सामने दो विकल्प होंगे। वह या तो इस काल्पनिक विचार को त्याग दे कि मानव अधिकार धरती पर ही हैं और प्राकृतिक संसाधनों से भरपूर लाभ उठाए और उन्हें व्यापारिक वस्तुएं मान ले, या फिर अपने विश्व दृष्टिकोण को त्याग दे और विश्व दृष्टिकोण को नामंजूर कर दे। वह अपनी उस भाषाई व्यवस्था से बाहर आ जाए और विश्व दृष्टिकोण का अनुसरण करें।

तथ्य यह है कि दुनिया में भाषाओं की स्थिति और ख़ासतौर से देशी लोगों की भाषाओं की स्थिति हाशिये पर है। ये लोग सांस्कृतिक रूप से अन्य लोगों के वर्चस्व का अनुभव कर रहें हैं जिससे उनकी हालत ख़राब हो गई है इससे जो चौकस रहने की आवाज उठ रही है वह हमेशा एक जैसी नहीं रहेगी। फिर भी, ऐसी उम्मीद करना महत्वाकांक्षा होगी कि इस कार्य की जिम्मेदारी का एक अंश भी राजनीतिक दलों को सौंप देने से पूरा होगा। इस मिशन को पूरा करना होगा और इसके लिए सिविल सोसाइटी में काम करने वाले विश्वविद्यालयों, साहित्यक और भाषाई अकादमियों, सदभाव संघों और एशोसिएसनों, गैरसकारी संगठनों व्यक्तिगत रूप मे विद्वानों, शोधकार्ताओं और समाजिक रूप से सक्रिय कार्यकर्ताओं की सहायता लेनी होगी। इसके लिए हमें शब्दकोषों, शब्दावलियों और व्याकरण की रचना लुप्तप्राय भाषा में करनी होगी। उसी भाषा में लेखांकन, संग्राहालयों आदि की रचना करनी होगी। ऐसा करके ही लुप्तप्राय भाषाओं को बचाया जा सकेगा। उस भाषा को बोलने वाले लोगों को वही सम्मान देना होगा जिसके वे अधिकारी है और उन्हें ये सम्मान इसलिए देना होगा क्योंकि वे वही हैं जो उन्हें होना चाहिए।

किसी समुदाय को एक भाषा का सृजन करने में सैकड़ों वर्ष लग जाते हैं। मानव समुदायों द्वारा सृजित सभी भाषाएं सामूहिक सांस्कृतिक विरासत की एक हिस्सा है। इसीलिए यह हमारी सामूहिक जिम्मेदारी है कि ये भाषाएं हमारे ज़माने में खोने न पाएं। ❑

(लेखक बड़ोदा में भाषा अनुसंधान केंद्र के संस्थापक हैं और द पीपल्स लिंग्विस्टिक सर्वे के अध्यक्ष हैं।

ई-मेल : ganeshdevy@yahoo.com)

अपने लेख हमें ई-मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई-मेल भी कर सकते हैं। ई-मेल करने के लिए कृतिदेव फांट इस्तेमाल करें और वर्ड ओपन फाईल yojanahindi@gmail.com पर भेजें। एक से अधिक लेखकों के नाम केवल विशेष शोध लेखों पर ही दें। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र संलग्न नहीं होगा वे स्वीकार नहीं की जा सकेंगी। रचना के प्रकाशन के संबंध में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार अथवा फोन न करें। विशेष अवसरों के लिए लेख तीन माह पूर्व प्राप्त हो जाने चाहिए। रचनाओं के साथ यथासंभव प्रासंगिक चित्र भी भेजें। डाक से भेजे जाने वाले लेखों की एक प्रति सीडी में भी भेजें। वापसी के लिए कृपया टिकट लगा और पता लिखा लिफ़ाफ़ा संलग्न करें।

– वरिष्ठ संपादक

कौशल विकास की ओर एक लंबी यात्रा

● शालिनी एस शर्मा

हाल ही में 25 जून को दिल्ली में तीसरा भारत-अमरीकी उच्च शिक्षा वार्तालाप संपन्न हुआ जिसमें भाग लेने के लिए वाशिंगटन से अंडरसेक्रेट्री ऑफ स्टेट तारा सोनैन्शाऐन के साथ कई अमरीकी आएं जिसमें भारत की तरफ से केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री श्री पल्लम राजू के साथ मंत्रालय के सभी उच्च अधिकारी मौजूद थे। वार्तालाप का ख़ास विषय था सामुदायिक कॉलेज उनका अमरीकी प्रतिरूप तथा उनको भारत में स्थापित करने की संभावनाएं।

पिछले कुछ वर्षों से सरकार की तरफ से शिक्षा को व्यवसाय से जोड़ने की कोशिशें प्रबल हो गई हैं। इनमें प्रमुख हैं वर्ष 2010 में शुरू किया गया राष्ट्रीय कौशल विकास मिशन जिसके अंतर्गत प्रधानमंत्री की अध्यक्षता में कौशल विकास पर एक राष्ट्रीय समिति की स्थापना की गई है। इस समिति का कार्य है कौशल विकास हेतु नीतियां सुनियोजित करना। कौशल मिशन का दूसरा हिस्सा है योजना आयोग के उपाध्यक्ष की अध्यक्षता में कार्य करने वाला एक समन्वय मंडल जो प्रधानमंत्री की राष्ट्रीय समिति द्वारा लिए गए निर्णयों को कार्यान्वित करता है, कौशल विकास मिशन का तीसरा व सबसे महत्वपूर्ण हिस्सा है राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (एनएसडीसी) जिसे 1946 के कम्पनीस एक्ट के तहत एक अलाभकारी कंपनी के रूप में स्थापित किया गया है तथा जिसमें राष्ट्रीय कौशल विकास न्यास से लगभग 1,000 करोड़ रुपये की भागीदारी भी सरकार ने की है। निगम को अब स्वयं 15,000 करोड़ रुपये की राशि दूसरे स्रोतों से इकट्ठा करनी है तथा असंगठित क्षेत्र सहित श्रम बाज़ार की सभी कौशल प्रशिक्षण आवश्यकताओं को पूरा करना है। इसी विषय की राष्ट्रीय नीति के अनुसार वर्ष 2022 तक लगभग 50 करोड़ लोगों को किसी न किसी प्रकार की कार्यकुशलता प्रदान करना अनिवार्य है। सभी मंत्रालयों को निर्देश दिए गए हैं की वो राज्य सरकारों तथा अन्य सभी हिस्सेदारों को इस कार्य में अपने साथ शामिल करें।

श्रम तथा रोज़गार मंत्रालय का लक्ष्य है 10 करोड़ लोगों को विभिन्न योजनाओं द्वारा प्रशिक्षित करना, जैसे कि शिल्पकार प्रशिक्षण योजना, कौशल विकास केंद्र योजना, शिक्षा प्रशिक्षण योजना, एमईएस के माध्यम से कौशल विकास पहल तथा डीजीई एंड टीके क्षेत्र संस्थान में प्रशिक्षण। एनएसडीसी का लक्ष्य 15 करोड़ लोगों को वर्ष 2022 तक कुशल बनाना है तथा अब तक इस विषय पर तीन प्रस्तावों को वो अनुमोदित कर चुका है। इन प्रस्तावों के अंतर्गत 10.5 व्यक्तियों को अगले 10 वर्षों में कुशल बनाया जाएगा। कुशल न्यास द्वारा एनएसडीसी को 200 करोड़ रुपये की राशि 2009-10 में दी जा चुकी है। इसमें से 13.5 करोड़ रुपये निगम अब तक इन तीन प्रस्तावों पर ख़र्च कर चुकी है जिनमें शामिल हैं 3.69 करोड़ रुपये जो दिए गए हैं हीरे-जवाहरात व जेवर बनाने वाले कारीगरों के प्रशिक्षण के लिए एक निर्यात केंद्र, बेसिक्स अकादमी को मिले हैं। 3.46 करोड़ रुपये तथा ओड़िसा की ग्रामतरंग सेवा को 5.90 करोड़ रुपये दिए जा चुके हैं।

जहां एक तरफ एनएसडीसी क्षेत्रीय कौशल परिषद् बनाने में जुटी है तथा अब तक लगभग दस परिषद् बना भी चुकी है, वहीं दूसरी ओर अखिल भारतीय प्रौद्योगिकी शिक्षा परिषद् यानी एआईसीटीई कौशल सेवा प्रबंधक नियुक्त करने में लगी है। किंतु सवाल यह है कि क्या नीतियां बनाने से समस्या का समाधान हो जाता है? कौशल विकास मिशन को शुरू हुए तीन साल हो गए हैं, एनएसडीसी को स्थापित हुए भी तीन साल हो गए हैं लेकिन अब तक व्यापार के लिए कुशल कर्मियों की उपलब्धता में कोई ख़ास बढ़ोतरी नहीं हुई है। हर क्षेत्र में कमी ज्यों की त्यों बनी हुई है।

सवाल नज़रिये का है

कौशल विकास से जुड़ी सभी नीतियों की ये एक बड़ी समस्या है कि वो जिनके लिए बनाई गई हैं वो उसको कोई ख़ास महत्व नहीं देते। संस्थाएं आकड़ों की बात करती हैं लेकिन इस बात पर कोई ध्यान नहीं देता कि उन मानव आंकड़ों को साकार करने के लिए इच्छुक लोग हैं क्या? व्यावसायिक शिक्षा को आज भी हिकारतभरी नज़रों से देखा जाता है। माना कि लकड़ी का काम करने वाले कुशल कारीगर या राजमिस्त्री आजकल भारी मांग में हैं या यों कहें की आजकल ऐसे कारीगरों की बाज़ार में भारी कमी है और वो वस्तुत: मुंहमांगी रक़म प्राप्त कर सकते हैं, पर क्या कोई भी मध्यवर्गी अभिभावक अपने बच्चों को ये सीखने के लिए प्रोत्साहित करेगा? नहीं! हर परिवार यह चाहता है कि उनके बच्चे कॉलेज जा कर डिग्री हासिल करें ना कि कौशल प्राप्त कर किसी ऐसे व्यवसाय में जुट जाएं। ऐसे में सरकार की कौशल मिशन की बातें केवल बातें ही लगती हैं।

पिछले कुछ दिनों में एआईसीटीई ने भी इस विषय में काफी काम किया है तथा गत वर्ष तात्कालिक मानव संसाधन विकास मंत्री श्री कपिल सिब्बल नें अगस्त 2012 में राष्ट्रीय वोकेशनल शिक्षा पात्रता रूपरेखा अर्थात एनवीईक्यूज की घोषणा की थी। मंत्रालय की एक प्रेस विज्ञप्ति के अनुसार यह कार्यक्रम क्षेत्र विशिष्ट है और इसे लागू करने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी, मीडिया, मनोरंजन, दूरसंचार, ऑटोमोबाइल, निर्माण, रिटेल, खाद्य-प्रसंस्करण, पर्यटन, होटल, आभूषण डिज़ाइन और फैशन डिज़ाइन जैसे क्षेत्रों की पहचान की गई है। योजना के तहत सात प्रमाण-पत्र स्तर हैं जिसमें प्रत्येक प्रमाण-पत्र स्तर के लिए लगभग 1,000 घंटे का समय निर्धारित है। इन 1,000 घंटों में से कुछ निश्चित घंटे वोकेशनल सामर्थ्य आधारित कौशल मॉड्यूल के लिए है और बाकी इसके साथ समेकित

सामान्य अभ्यास के लिए। प्रमाण-पत्र स्तर पांच के बाद वोकेशनल शिक्षा के लिए डिप्लोमा प्रदान किया जाएगा। इसके अलावा विश्वविद्यालय प्रणाली में स्तर सात को पूरा कर वोकेशनल शिक्षा के लिए डिग्री प्राप्त की जा सकती है बशर्ते उसे वैधानिक मंजूरी प्राप्त हो। यह योजना का प्रमुख अंश है।

विज्ञप्ति के अनुसार, 'योजना के तहत औपचारिक शिक्षा प्रणाली में किसी प्रमाण-पत्र स्तर में शामिल हुए बगैर तथा पाठ्यक्रम में बदलाव के बगैर तथा इसके विपरीत अन्य पाठ्यक्रम में शामिल होकर विद्यार्थी सामर्थ्य आधारित कौशल शिक्षा के साथ सामान्य शिक्षा के विकल्प का चयन कर सकते हैं। इससे वोकेशनल शिक्षा, सामान्य शिक्षा और कार्य बाज़ार के बीच संपूर्ण बहु-प्रवेश निकास प्रणाली प्राप्त हो सकेगी।'

यह बात सही है कि एनवीईक्यूज में वोकेशनल डिग्री देने का प्रावधान एक सकारात्मक क़दम है तथा इससे विद्यार्थियों को आकर्षित करने में मदद मिलेगी किंतु इस योजना की सफलता उन कौशल प्रबंधकों पर निर्भर करती है जो सही मायनों में व्यापार से जुड़े हों या जो खुद बड़े निर्माणकर्ता हों। मानव संसाधन की सबसे बड़ी खपत इन्ही बड़े निर्माणकर्ताओं की कंपनियों में होती है। सरकार की हमेशा यह कोशिश रहती है कि यही निर्माणकर्ता कौशल का प्रशिक्षण छात्रों को दें जिससे वो जल्दी लाभकारी बन जाएं। किंतु बड़ी कंपनियां इस जिम्मेदारी को लेने से कतराती हैं क्योंकि सभी का ये मानना है कि सरकार के साथ काम करना एक सरदर्दी है। वो खुद भले ही अपने निजी संस्थानों में नये कर्मियों को प्रशिक्षण दे दें लेकिन जहां सरकार उन्हें एक जिम्मेदारी के तौर पर यह काम संभालने के लिए कहती है तो सब चुप्पी साध लेते हैं।

एनवीईक्यू जैसी योजना या फिर कोई और सरकारी-निजी साझेदारी (पीपीपी) योजना में यदि कोई उत्साह दिखाता है तो वह हैं निजी सेवा प्रदाता जो शिक्षा के क्षेत्र में ही व्यवसाय करते हैं। योजना चाहे नये केंद्र स्थापित करने की हो या सरकार की किसी नीति में मदद करने की, निजी प्रदाता ऐसी सेवाएं प्रदान करने के लिए हमेशा तत्पर रहते हैं क्योंकि ऐसा करने में उनका खुद का भी फायदा रहता है। किंतु सरकार निजी के नाम पर ऐसी सेवाएं देने वाले प्रदाताओं को एक लंबी दूरी पर रखती है क्योंकि उसके अनुसार इन प्रदाताओं की रूचि अपना व्यापार बढ़ाने में रहती है, छात्रों के प्रशिक्षण में नहीं। हालांकि कुछ हद तक यह बात सही भी है। सरकार को यह तो ज़रूर तय करना होगा की वह आखिर चाहती क्या है? व्यापार, उद्योग व शिक्षा की दूरी को कम करना या निजी तथा सार्वजनिक के फर्क़ को हर हाल में बरक़रार रखना।

सामुदायिक कॉलेज

सरकार की 'कभी हां कभी ना' नीति का सबसे बड़ा उदाहरण है सामुदायिक कॉलेज। जिस तरह मंत्रालय के लोग आजकल इसी मंत्र का जाप कर रहे हैं तथा जिस तरह पिछले एक साल में इस विषय पर कम-से-कम तीन बड़े कार्यक्रम हो चुके हैं, उससे कोई भी व्यक्ति यही समझेगा कि यह सरकार की कोई नयी योजना है। किंतु वास्तविकता ऐसी है नहीं। इंस्टिट्यूट ऑफ इंटरनेशनल एजुकेशन द्वारा प्रकाशित सामुदायिक कॉलेज विषय पर एक पुस्तिका के अनुसार भारत में इस तरह के कॉलेज की शुरुआत हुई थी। सन 1996 में जब अमरीका में आयोवा स्थित सिंक्लैर कम्युनिटी कॉलेज नें दक्षिण भारत स्थित जेसुइट मिशन के साथ हाथ मिलाया था। इससे सीख लेकर तमिलनाडु ने सामुदायिक कॉलेज में प्रमाण पत्र तथा प्रमाणित डिप्लोमा इत्यादि देना शुरू किया। डॉक्टर जेवियर अल्फोंसे के मार्गदर्शन में 1990 से 2013 के बीच सामुदायिक शिक्षा व शोध विकास केंद्र (आईसीआरडीसीई) ने लगभग 300 सामुदायिक कॉलेज स्थापित किए जो आज भी प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं।

सन 2000 में डिस्टेंस एजुकेशन कौंसिल ने मुक्त विश्वविद्यालयों में सामुदायिक कॉलेज स्थापित करने हेतु प्रमाण-पत्र देने का निर्णय लिया। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू) ने कुलपतियों की दो दिन की एक बैठक बुलाई जिसमें 10 विश्वविद्यालयों नें भाग लिया। इस बैठक में मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारियों सहित शामिल थे डॉक्टर अल्फोंसे तथा अमरीका के मोंट्गोमेरी कम्युनिटी कॉलेज के उपाध्यक्ष व शिक्षकगण। काफी विचार-विमर्श के बाद जुलाई 2009 में इग्नू ने सामुदायिक कॉलेज योजना का शुभारंभ किया। इस योजना का उद्देश्य था स्कूल छोड़े हुए बच्चों को अनौपचारिक शिक्षा प्राप्त करने का एक मौका देना। जुलाई 2011 तक इग्नू के तहत 540 सामुदायिक कॉलेज चल रहे थे जिसमें लगभग 50,000 बच्चे 2,350 पाठ्यक्रमों में शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। किंतु, सामुदायिक कॉलेज की अवधारणा से इतना प्रभावित होने के बावजूद सरकार ने 2011-12 में इग्नू के सभी कॉलेज बंद कर दिए। बच्चों को प्रमाण-पत्र तक नहीं दिए गए और न ही कोई संतोषजनक जवाब दिया गया कि इन कॉलेजों को बंद करना क्यों अनिवार्य था। कमियों की पूर्ती करना, उनके लिए सख्त क़दम उठाना एक बात है लेकिन यहां तो कॉलेजों को पूर्णतः बंद ही कर दिया गया।

कौशल विकास को बढ़ावा देने के लिए सबसे पहले आवश्यकता है सोच में बदलाव लाने की। जब तक अभिभावक और युवा युवतियां कौशल को आकांक्षापूर्ण नहीं मानेंगे तब तक वह उसकी तरफ क़दम नहीं बढ़ाएंगे। उसे अपनाने में वो हिचकिचाएंगे और सोच में बदलाव लाने के लिए सरकार तथा निजी संस्थानों, दोनों को युद्धस्तर पर कार्य करने होंगे। टेलीविजन व रेडियो के माध्यम से कौशल प्रतिभा के सामर्थ्य को लोगों के दिलोदिमाग तक पहुंचाना होगा। खुशी की बात यह है की सत्ता में कार्यरत कुछ बुद्धिजीवियों के दिमागों में भी यह बात घर कर गई है तथा वह इस पर अमल करने पर ज़ोर दे रहे हैं।

इस वर्ष अप्रैल में कॉन्फेडरेशन ऑफ इंडियन इंडस्ट्री द्वारा आयोजित दो दिन की अंतर्राष्ट्रीय कार्यशाला में तीन क्रमिक बलों का गठन किया गया जिनमें एक था कौशल विकास के मुद्दों पर। इस बल द्वारा सरकार को दिए गए प्रमुख सुझावों में से एक है क्षेत्र कौशल परिषदों को समर्थ बनाना तथा कौशल विकास के बारे में जागरुकता पैदा करना। बल ने प्रशिक्षुता यानी अप्रेंटिसशिप पर भी ख़ासा ज़ोर दिया है तथा मांग है कि मानव संसाधन विकास मंत्रालय अपने चार क्षेत्रीय प्रशिक्षुता केंद्रों को सुगठित करे। यदि सरकार इन सभी सुझावों पर शीघ्रता से अमल करती है तो उसके लिए अच्छा होगा।

लेकिन सभी सही क़दम उठाने के बाद भी यह बात तो तय है की चाहे एनवीईक्यू हो या एनएसडीसी, 50 करोड़ लोगों को कुशल बनाना हमारे लिए अभी मुंगेरी लाल के हसीन सपनों जैसा है। ❑

(लेखिका कॉन्फेडरेशन ऑफ इंडियन इंडस्ट्रीज (सीआईआई) में उच्च शिक्षा की प्रमुख हैं। इस लेख में व्यक्त विचार उनके निजी हैं तथा वह सीआईआई के विचारों का प्रतिनिधित्व नहीं करते।

ई-मेल : shaleenee18@gmail.com)

हिमालय की नज़ाकत

● वी. के. जोशी

मशहूर अंग्रेज कवि जॉन कीट्स ने एक बार कहा था ''धरती की कविता कभी खत्म नहीं होगी।'' कीट्स एकदम सही थे। धरती अपने रूप बदलती रही है। धरती के विभिन्न रूपों के निशान धरती के ही इतिहास के पन्नों में दफन हैं। हिमालय की ऊंची चट्टानों की सतहों के बीच समुद्री जीवाश्म की प्रचुर मात्रा मौजूद हैं, जो बताते हैं कि उत्तुंग पर्वत शृंखला की जगह एक समय वहां लहराता समुद्र हुआ करता था।

यदि यह सच है तो सवाल यह भी है कि इतनी गहराई से यहां इतनी ऊंचाई कैसे बन गई। कोई भी यही सोचेगा कि हिमालय यहां स्थिर और अचल है लेकिन नहीं, हक़ीक़त यह है कि वो भंगुर और लगातार चलायमान है। हिमालय को जानने के लिए हमें पहले यह जानना चाहिए कि वो अस्तित्व में कैसे आया।

हिमालय का जन्म

ये कोई 50 लाख साल पहले की बात है, जब इंडियन प्लेट टेथिस सागर से खिसक रही थी, नोह के आर्क की तरह, जो जीव-जंतुओं, वनस्पतियों, प्राचीन नदियों, घाटियों, प्राचीन पहाड़ियों और पठार की खेप की तरह था। इंडियन प्लेट जब स्थिर भूमि से टकराई तो इतनी जोरदार टक्कर हुई कि टकराहट रेखा पर पहाड़ों की एक शृंखला बन गई। हिमालय विश्व का सबसे ऊंचा और युवा पहाड़ बन गया। ये टक्कर इतनी तगड़ी थी कि आज भी इंडियन प्लेट अंदर से एशियन प्लेट को औसतन पांच सेमी प्रतिवर्ष की दर से खिसकाती रहती है। इस तरह से हिमालय के अंदरूनी हिस्से में लगातार दबाव-तनाव बना रहता है। इसकी वजह से ही हिमालयी क्षेत्र में लगातार भूकंप आते रहते हैं।

हिमालय के उदय के साथ धरती के इतिहास का नया अध्याय भी शुरू हुआ। भारतीय उपमहाद्वीप की भौगोलिक कहानी दोबारा लिखी गई। इसमें सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र जैसी महान नदियों की ख़ास भूमिका थी। ये नदियां पहाड़ियों के साथ घुमाव लेते हुए घाटियों का निर्माण करते हुए बह निकलीं। उन्होंने घिसे हुए पहाड़ों के साथ लाई गई सामग्रियों से सतह पर सतह बनाते हुए विशाल मैदानी भूभाग तैयार किया। सालाना बाढ़ और जलोढ़ के साथ ताज़ी सतह के निर्माण के क्रम का चक्र भी तब से लगातार चला जा रहा है।

ऊंचे और विशाल हिमालय ने भारतीय उपमहाद्वीप के भूगोल को ही नहीं बदला बल्कि इस क्षेत्र की जलवायु को भी बदल दिया। इससे मानसून की शुरुआत हुई। मानसून के कारण नदी के किनारों का मैदानी भूभाग अत्यधिक उर्वर धरती में बदल गया। इससे मानव का जीवन आसान हुआ। नदियों के किनारे आबादियों की शुरुआत हुई, सिंधु घाटी सभ्यता फलीफूली। बाद में गंगा घाटी सभ्यता ने इसकी जगह ली।

कोठीबनाल के ख़ास आर्किटैक्चर वाले मकान, जो एक हजार साल से खड़े हैं।

प्रकृति कभी नहीं सोती। प्राकृतिक माध्यम मसलन हवा और पानी लगातार काम करते रहते हैं। कैसे पानी का असर हिमालय पर पड़ा और किस तरह अभी इसका असर जारी है, ये जानना महत्वपूर्ण होगा।

ग्लेशियर प्रकृति के रोड रोलर

अगर हिमालय की नदियां 'वी' के आकार में घाटियां बनाने में व्यस्त थीं तो ग्लेशियर भी 'यू' आकार की घाटियां सृजित करने में लगे थे। ग्लेशियरों का काम कड़ी मेहनत के बावजूद धीमा था लेकिन उतना ही असरदार। जब एक ग्लेशियर खिसकता है तो बेहद विशाल, ताक़तवर और प्राकृतिक रोड रोलर की तरह होता है। इसके नीचे जो भी आता है वो पिस जाता है और चूर-चूर होकर आटे की तरह हो जाता है। ग्लेशियर्स ने घाटियों में फैली चट्टानों को भी बड़ी मात्रा में हटाया। ग्लेशियर का मतलब है बर्फ़ और बर्फ़ का मतलब है हिमकारी तापमान। पानी का बहुत बड़ा भू-भाग ग्लेशियर के कब्जे में आकर चट्टानों की दरारों में घुसकर रात में जम जाता है। दिन में जब ये पिघलता है और काफी बड़ी तादाद में फैल जाता है तो तेज़ गड़गड़ाहट के साथ चट्टानों की बौछार करने लगता है।

इस तरह ग्लेशियर वैली में तमाम आकारों के गोल पत्थर और चट्टानों का चूरा मलबे की तरह फैल जाता है। इसे हिमोढ़ भी कहा

जाता है। एक सक्रिय ग्लेशियर के कब्जे वाली घाटी में पानी कई जगहों से पिघलकर सतह पर आता रहता है, इस पिघले पानी का एक हिस्सा सतह के अंदर जाकर नीचे की ओर बह निकलता है। इसलिए घाटी की ज़मीन हमेशा दलदली होती है। वही खिसकता हुआ ग्लेशियर्स अपने पीछे बड़ा दबाव छोड़ जाता है। जो ग्लेशियर के पिघले हुए हिस्से से भर जाता है, जिससे झीलें या केटल होल्स तैयार होते हैं। इसलिए ग्लेशियर वास्तव में एक जलीय संसार है, आंशिक तौर पर बर्फ़ के रूप में जमा और आंशिक तौर पर पिघला पानी।

केदारनाथ एक बर्फ़ीली घाटी

पौराणिक केदारनाथ मंदिर शानदार ढंग से केदारनाथ गिरी पिंड की छाया में आठवीं शताब्दी से खड़ा है। यह मंदिर मंदाकिनी नदी घाटी में स्थित है। केदारनाथ में ये घाटी पांच चोटियों से घिरी है-विज (5,505 मीटर) मीटर ऊंची चोटी, भारत कुंटा चोटी (6,567 मीटर) मीटर, केदारनाथ चोटी (6,940 मीटर), महालय पर्वत चोटी (5,870 मीटर) और हनुमान टाप चोटी (5,320 मीटर)। ये सभी चोटियां बर्फ़ से ढकीं रहती हैं। यहां बर्फ़ हमेशा इकट्ठी रहती है। इस घाटी की चौड़ाई आगे की ओर छह किमी. और दक्षिणी छोर की ओर, जहां ये संकरी है, तीन किमी. है।

मंदाकिनी नदी अपनेआप में अद्वितीय है क्योंकि ये दो ग्लेशियरों विज, चौराबारी और अलग कर दिए सहयोगी ग्लेशियरों से सिंचित होती रहती है, इस तरह इस पूरी घाटी पर इसी का वर्चस्व है। जोखिम के लिहाज से केदारनाथ की ये ख़ास भौगोलिक स्थिति है। हिमोढ़ के अध्ययन के बाद जियॉलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया (जीएसआई) के जाने-माने भूगोलवेत्ता दीपक श्रीवास्तव इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि कभी ये दो ग्लेशियर, जिनका पहले उल्लेख किया जा चुका है, एक साथ थे और ये घाटी के ऊपरी छोर की पूरी एक किमी. की चौड़ाई को आच्छादित करते थे।

केदारनाथ के हिमोढ़ अच्छी तरह स्थापित हैं और यहां से तीन किमी. दूर उनका प्रभाव ऐसे स्थान पर है जो वनस्पतियों से युक्त है। हिमोढ़ के चलते ये भी अंदाज लगाया गया कि इतिहास पूर्व काल में यहां कम से कम चार बड़े ग्लेशियर रहे होंगे, जो घटकर अब वर्तमान में काफी नीचे तक आ गए हैं। शोधकर्ता डी. पी. डोभाल और उनके सह-शोधकर्ताओं का कहना है कि मंदाकिनी नदीघाटी का जलीय क्षेत्र करीब 67 वर्ग किमी. (रामबाड़ा तक) है, जिसमें 23 फीसदी हिस्सा ग्लेशियर के आच्छादित हैं। ये बात उन्होंने करंट साइंस के 25 जुलाई, 2013 के अंक में कैलाश हादसे पर अपने एक पेपर में कही है।

केदारनाथ हादसा

केदारनाथ कस्बा चौराबारी के बाहरी मैदानों और जोड़ीदार ग्लेशियरों के साथ स्थित है। मंदाकिनी और सरस्वती नदियों के रास्ते केदारनाथ कस्बे को घेरते हुए जाते हैं। उनकी धाराएं हर साल अपने किनारों को काटती रहती हैं। यहां सतह पर भी पानी की उपधाराएं भी हैं-जो ग्लेशियर के पानी से लगी ज़मीन पर स्थित हैं। केदारनाथ मंदिर के इर्द-गिर्द हुए निर्माण से सतह पर पानी के बहाव को बाधा पहुंची और सतह पर बहने वाली दूसरी धाराओं को भी। इसलिए ये केवल बादल का फटना नहीं था बल्कि 15 और 16 जून को वहां हुआ 325 मिमी. रेकॉर्ड बारिश (जैसा कि चौराबारी स्थित वाडिया इंस्टीट्यूट ऑफ हिमालयन जियॉलॉजी के मौसम संबंधी केंद्र ने रिकॉर्ड किया) हुई, जो गांधी सरोवर बांध को नुक़सान पहुंचाने के लिए काफी था। ये बांध बारिश और बारिश के चलते बर्फ़ के पिघलने से लबालब हो चुका था। जिससे जल ने जबरदस्त तांडव किया, न केवल कई बिल्डिंग्स बह गईं बल्कि मानवों और पशुओं की जाने भी गईं।

सौभाग्य से मंदिर को कोई आंच नहीं आई और वो बचा रहा। ये भी एक तथ्य है कि ये मंदिर 14वीं से 17वीं शताब्दी के बीच अल्प हिमयुग के दौरान बर्फ़ की मोटी परतों के बीच दब गया लेकिन इसके बाद भी बचा रहा। बर्फ़ के नीचे दबने का असर मंदिर की दीवारों पर अब भी देखा जा सकता है। केदारनाथ की अतिसंवेदनशीलता पर जीएसआई ने 1994-95 में ग्लाशियोलॉजिकल अध्ययन पर विस्तृत रिपोर्ट जारी की थी। इस रिपोर्ट के अनुसार दीपक श्रीवास्तव ने केदारनाथ घाटी में 28 ऐसे क्षेत्रों को चिह्नित किया था, जहां बर्फ़ का ढेर लगातार गिरता रहता है और उन्होंने अबाध तौर पर निर्माण कार्यों को जारी रखने पर आपदा की भी चेतावनी दी थी। जैसा कि होता है इस ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया और तबाही हो गई।

ये दुर्भाग्यपूर्ण है कि उत्तरांचल ने इस बार प्रकृति के प्रकोप का सामना किया। केवल केदारनाथ में ही नहीं बल्कि कई दूसरे इलाक़ों में भी तबाही हुई, इसमें गोविंद घाट, उत्तर काशी, पिथौरागढ़ और मुनासिरी जैसी जगहें शामिल हैं। इन सभी जगहों पर 15 और 16 जून को भारी बारिश के बाद जमकर भू-स्खलन हुआ।

भूस्खलन का कारण

इस मौके पर ये समझना उचित होगा कि भूस्खलन का कारण क्या है। आमतौर पर पहाड़ों के ढलाव के साथ की सामग्री अपनी जगह पर स्थिर बनी रहती है लेकिन पानी, भूकंप और उफनती हुई नदियों के कारण पहाड़ों की तलहटी के कटने और पहाड़ों को काटकर सड़कें बनाने और दूसरी निर्माण गतिविधियों के कारण पहाड़ों के ढलाव की मिट्टी और चट्टानें ढीली पड़ गईं और भूस्खलन होना शुरू हो गया। एक और बात यह भी है कि इन युवा पहाड़ों पर पड़ने वाला पानी इनके अंदर चला गया और वहां से बाहर निकलने के उसने कई रास्ते बना लिए। जब इन रास्तों को रोक दिया गया तो यह भी भूस्खलन का एक कारण बन गया।

इसीलिए पहाड़ों पर किसी भी निर्माणाधीन परियोजना में पानी की समुचित निकासी पहली प्राथमिकता होनी चाहिए। सौ साल से भी ज़्यादा पुराना होने के बाद कालका-शिमला रेल लिंक परियोजना जल निकासी का मुकम्मल उदाहरण है। इतने साल होने के बाद भी इस रेल लाइन में कभी भी भूस्खलन से बाधा नहीं पड़ी।

उत्तराखंड में जिन क्षेत्रों में प्रकृति की मार पड़ी है, वहां अब बनाए जाने वाले मकानों, होटलों और धार्मिक रुचि के स्थानों में इन कॉमन फीचर को जोड़ा जाना चाहिए, ख़ासकर उन निर्माणाधीन में तो ये ज़रूरी कर दिया जाना चाहिए जो नदी के करीब हों और नदी के चबूतरे पर ऊंची इमारतों के निर्माण को अनुमति नहीं दी जानी चाहिए क्योंकि नदी के चबूतरे कभी स्थिर और टिकाऊ नहीं होते और कभी बाढ़ की प्रचंडता को बर्दाश्त नहीं कर पाते। अलकनंदा और भागीरथी नदी के प्रकोप में उनके किनारे बने चबूतरे न केवल ढह गए बल्कि नदियां अपने साथ इन पर बनी इमारतों को भी बहा ले गईं।

नदियां पहाड़ों पर शायद ही कभी सीधी रेखा में बहती हैं। घुमावदार नदी अपने साथ उभरी हुई चीज़ों को घिसती और काटती हुई चलती है और उस पर लगी हुई सामग्री धीरे धीरे कमजोर पड़ती चली जाती है। इस बात को आजकल के बिल्डर आमतौर पर अनदेखा कर देते हैं। उन्हें लगता है कि सीमेंट-कंक्रीट की बदौलत वो बारिश और प्रकृति की ताक़तों का मुक़ाबला कर पाएंगे, लेकिन उनकी यही गलती उत्तराखंड में न जाने कितने लोगों की जान लेकर अपूरणीय क्षति कर गई।

गोविंद घाट पर प्रकृति का गुस्सा

गोविंदघाट को सिखों के पवित्र स्थल हेमकुंट साहिब का दरवाजा माना जाता है, ये अलकनंदा के दाहिने किनारे पर स्थित है। जीएसआई टीम, जिसने तहस-नहस हुए इस इलाक़े का दौरा करने के बाद गोविंदघाट से रिपोर्ट दी कि यद्यपि वहां जान का कोई नुक़सान तो नहीं हुआ लेकिन क़रीब 250 वाहन नदी में तेज़ बहाव में बह गए। गुरुद्वारा और उसकी बहुमंजिली इमारतें 17 जून को बाढ़ के पानी से बुरी तरह प्रभावित हुई। ये सारी इमारतें अलकनंदा नदी के चबूतरे पर बनाई गई थी। इसके उल्टे किनारे पर एक भूस्खलन ने नदी के बहाव को कुछ समय के लिए रोक दिया था, इससे प्रकोप और बढ़ गया। इसके चलते नदी के दूसरे किनारे को जोड़ने के लिए बनाया गया फुटओवर ब्रिज भी बह गया। बाढ़ का पानी गुरुद्वारा परिसर में घुस गया, पेड़ गिर गए और परिसर में नदी के साथ आई सामग्री और बालू भर गई। जीएसआई टीम का कहना है कि आगे से इस इलाक़े में अलकनंदा के टैरेस पर किसी भी निर्माण की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, क्योंकि भौगौलिक तौर पर ये इलाका बाढ़ के लिहाज से ख़ासा संवेदनशील है। उन्होंने यहां पर मजबूत बचाव दीवारें बनाए जाने की संस्तुति भी की, जिससे गुरुद्वारा की इमारत और दूसरे साथ लगे भवन सुरक्षित रह पाएं। ये दीवारें नदी में आई बाढ़ के उच्चतम स्तर के निशान से ऊंची होनी चाहिए। नदी के दाहिने किनारे की ओर से गुरुद्वारे के नीचे की ओर बहने वाली धाराओं गोविंदघाट की ओर जा रही रोड के साथ दीवार बनाकर स्थिर किया जा सकता है।

उत्तरकाशी में जल प्रलय

जिला मुख्यालय उत्तरकाशी में अक्सर भूकंप, भूस्खलन आने के साथ भागीरथी नदी में बाढ़ आती रहती है। पिछले एक दशक में, इस इलाक़े में सबसे जबरदस्त भूस्खलन वर्ष 2003 में हुआ। अगस्त 2003 में जीएसआई के भू-गर्भवेत्ताओं का एक दल यहां वरुणाव्रत चोटी का दौरा करने पहुंची। उन्होंने एक और भूस्खलन की शुरुआत पर गौर किया और तुरंत जिलाधिकारी को सावधान कर दिया। तुरंत लोगों को हटाकर वह जगह खाली कराए जाने से एक बड़ा हादसा बच गया। 24 सितंबर, 2003 पहाड़ों से पत्थर तेज़ी से नीचे आने लगे और 50 करोड़ की संपत्ति तबाह हो गई जबकि तीन हजार लोग प्रभावित हुए। दरअसल वरुणाव्रत पर्वत की भौगोलिक आकृति ऐसी है कि वो भुरभुरे और नरम पदार्थों से भरी है। यहां जब पानी गिरता है तो वो तुरंत ढलाव से नीचे आ जाता है। 1,800 मीटर ऊंचे पर्वत के निचले हिस्से में 1,100 मीटर की ऊंचाई पर मुख्य कस्बा बसा हुआ है। ऊपर के टॉप को छोड़कर वरुणाव्रत पर्वत की ढाल खासी तीव्र है इसलिए अगर यहां एक बार भूस्खलन शुरू हुआ तो रुकता नहीं।

जीएसआई टीम ने रिपोर्ट दी है कि नेशनल हाई-वे 108 के साथ बने घरों को सबसे ज़्यादा नुक़सान पहुंचा। ऐसा पहली बार नहीं हुआ कि उत्तरकाशी भूस्खलन से प्रभावित हुआ। अतीत में कस्बे का यह हिस्सा प्रकृति के क़हर का सामना करता रहा है। लेकिन इसके बाद भी यहां घर बनते रहें। भविष्य में इस तरह के नुक़सान को कम करने के लिए जीएसआई टीम ने कुछ जियोटेक्निकल उपाय करने की संस्तुति की थी ताकि भूस्खलन का सामना बेहतर ढंग से किया जा सके। इन उपायों को राज्य सरकार ने माना और इसी का नतीज़ा है कि अब नुक़सान कम हो रहे हैं। लेकिन वरुणाव्रत ढलाव की अतिसंवेदनशीलता बरक़रार है और भागीरथी नदी को भूस्खलन की छाया तले ही बहना होगा।

उत्तरकाशी को गंगोत्री और इस इलाक़े में आने वाले हज़ारों श्रद्धालुओं के लिए द्वार माना जाता है। इसके चलते यहां बड़े पैमाने पर होटल और लॉज बनी हुई हैं। दुर्भाग्य से न तो नगर निगम के अधिकारी और न ही बिल्डर्स को महसूस हुआ कि जो इमारतें वो यहां बना रहे हैं वो बाढ़ के लिहाज से बेहद संवेदनशील हैं। भागीरथी नदी में पहले भी अचानक बाढ़ आ चुकी है। हाल का हादसा अगर जबरदस्त बारिश के कारण हुआ तो उसके तुरंत बाद भूस्खलन के कारण भी, नदी के लिए बाढ़ के इतने पानी को संभाल पाना मुश्किल हो गया और नतीज़े में नदी के दाहिने किनारे पर प्रचंडकारी बाढ़ ने रौद्र रूप दिखाया।

इस त्रासदी ने उत्तराखंड को गंभीर झटका दिया है। दूसरे स्थानों मसलन-मुनसियारी और पिथौरागढ़ में नुक़सान ऊपर बताए गए अन्य स्थानों की तुलना में कम हुआ। क्योंकि इन स्थानों में जनसंख्या का दबाव कम है। पर्यटकों और श्रद्धालुओं के अलावा स्थानीय लोगों को भी जान-माल की जबरदस्त क्षति ज़रूर पहुंची। लोगों की जानें गईं, संपत्ति के अलावा आजीविका को नुक़सान पहुंचा।

प्रकृति की इस विभीषिका को नजरंदाज नहीं करना चाहिए और राज्य और केंद्र सरकार को पूरे परिदृश्य की विवेचना करके बेहतरीन विशेषज्ञों की सेवाएं लेकर उत्तराखंड के इन स्थानों को फिर से बसाना चाहिए। संयोगवश उत्तराखंड में एक गांव है कोठीबनाल। वहां कुछ मकान 1,000 साल तक पुराने हैं। ये मकान इतिहास के गवाह रहे हैं और कई भयंकर भूकंप भी झेल चुके हैं वो आज भी बिना किसी आंच के खड़े हैं। इन मकानों का आर्किटेक्चर इतना ख़ास है कि इन्हें अब कोठीबनाल आर्किटेक्चर भी कहा जाने लगा है। ये भूकंप प्रतिरोधी हैं। इनका आर्किटेक्चर हमारे पूर्वजों ने भूकंप, बाढ़ और भूस्खलन की वैज्ञानिक जानकारी के बगैर तैयार किया था। दरअसल, उन्होंने कॉमनसेंस का इस्तेमाल किया था। तो भला हम क्यों नहीं जोखिमग्रस्त राज्य में अपने मकानों को बनाने के लिए ऐसे कॉमनसेंस का इस्तेमाल कर सकते।

उत्तराखंड के पर्यावरण एक्टिविस्ट सुंदरलाल बहुगुणा कहते हैं कि यह मुद्दा केवल विकास बनाम पर्यावरण का नहीं है बल्कि विनाश बनाम जीवित रहने का है। ❑

(लेखक भारतीय भूगर्भ सर्वेक्षण, उत्तरी क्षेत्र के निदेशक रह चुके हैं। सेवानिवृत्त के बाद से वह भूगर्भ संबंधी विषयों पर लगातार लेखन कर रहे हैं।

ई-मेल : joshi.vijaykumar@gmail.com)

क्या है पढ़ना?

● उषा शर्मा

नवादा गांव के एक प्राथमिक विद्यालय में पहला दिन! कक्षा एक के बच्चों की खुशनुमा क्लास! अंजलि, परी, कावेरी, ज्योति, इकरा, ज़ीनत, सोनाक्षी, खुशी ... सभी कक्षा एक के बच्चे हैं। बच्चे अपने-अपने काम में व्यस्त थे। मेरे अंदर आते ही सिर्फ़ कुछ बच्चों की नज़र अपने काम से हटकर मेरी तरफ पड़ी। लेकिन बाक़ी बच्चे अपने-अपने काम में मशगूल थे। जिन्होंने नज़र उठाकर देखा भी तो इस अंदाज़ से कि जैसे मैं किसी बच्चे का दाखिला करवाने आई हूं। मेरे जैसे कई लोग अकसर उनकी कक्षा में उनकी 'मैम' के पास स्कूल में दाखिला करवाने आते थे। लेकिन उनका यह भ्रम जल्दी ही दूर हो गया, क्योंकि मैं कक्षा में आकर उन्हें, उनके काम को, उनकी कक्षा की दीवारों को निहारने लगी थी। मुझे तीन महीने उन्हें पढ़ाना था। लेकिन अब भ्रम टूटने की बारी मेरी थी। पहले ही दिन के कुछ पलों में मुझे पता चल गया कि मैं नहीं बल्कि ये मुझे बहुत कुछ 'पढ़ाएंगे'!

अगले दिन मैं पूरे जोश के साथ कक्षा एक के बच्चों के सामने थी। मैंने उनसे कहा, ''बच्चो! हिंदी की क़िताब निकालिए।''

''अ से अनार वाली!''– यह परी की आवाज़ थी। इसके बाद कुछ और बच्चों की भी यही आवाज़ सुनाई दी।

''अ से अनार वाली क़िताब?'' मैंने मन में दोहराया। यह मेरा पहला 'सबक' था।

''हां, हिंदी की क़िताब 'रिमझिम' निकालिए।''– मैंने जानबूझकर हिंदी की क़िताब का नाम दोहराया ताकि बच्चे उससे परिचित हो जाएं। अब उसमें वह पन्ना खोलने के लिए कहा जिसमें कक्षा का दृश्य बना हुआ था। बच्चों से उस तस्वीर पर बातचीत शुरू हुई। क्या यह जगह कुछ जानी-पहचानी-सी लग रही है? इसमें कौन-कौन हैं? क्या कर रहे हैं? आपको अपनी क्लास में सबसे अच्छा क्या लगता है? इनकी क्लास में क्या-क्या है? हमारी क्लास में क्या-क्या है? और भी ढेर सारी बातें। बच्चों ने अपनी कक्षा को ध्यान से देखना शुरू किया और चीज़ों के नाम बताते चले गए। मैं उन शब्दों को बोर्ड पर लिखती चली गई– मेज़, बस्ता, बोतल, दरवाज़ा, बच्चे, मैम, क़िताब, कॉपी, पेंसिल, ...। फिर एक-एक शब्द के नीचे अंगुली रखकर बच्चों से उन शब्दों को पढ़ने के लिए कहा। इकरा, पलक, प्राची शब्दों को अपेक्षाकृत ज़ल्दी से पढ़ रहे थे। कुछ इस तरह– मेज, बस्ता, बोतल....। लक्ष्मी, कशिश, खुशी, ज्योति शब्द के हिज्जे करते हुए पढ़ रहे थे– मे/ज/मेज, ब/स/ता/बस्ता, बो/त/ल/बोतल। काजल, अंजलि शब्दों के अक्षर ही पहचान पा रही थीं, कुछ इस तरह– म/ज/मज/मेज, ब/स/त/बसत/बसता। रहनुमा, कावेरी, परी, सोनाक्षी बोर्ड पर लिखे गए शब्दों के केवल अक्षर ही पहचान पा रही थीं– ये म है/ये ज, ये ब/ ये स/और त। अलीशा, जेसिका को वर्णों की बिल्कुल भी पहचान नहीं थी। बहुत प्रोत्साहित करने के बाद भी वे कोई भी शब्द नहीं पढ़ पाईं। कक्षा में कुछ ऐसे भी बच्चे थे जो मन ही मन अनुमान लगाकर पढ़ने की कोशिश कर रहे थे। खुशबू, स्नेहा शब्दों का पहला अक्षर देखतीं, उन्हें पहचानने की कोशिश करतीं और अनुमान से शब्द पढ़ देतीं, जैसे– 'मेज़' का 'म' पहचान लिया और बोल दिया 'मेज'। लेकिन असल बात थी– पढ़ने की कोशिश करना जो सभी ने की!

मैंने सभी बच्चों से कहा, ''अपनी हिंदी की कॉपी निकालिए और उसमें अपनी क्लास की तस्वीर बनाइए।'' ''आ से अनार वाली?''– इस बार यह परी की नहीं बल्कि कावेरी की आवाज़ थी। यह मेरा दूसरा सबक था।

इस बार मैं उतना सोच में नहीं पड़ी, मुसकरा भर दी और कहा, ''हां, हिंदी की कॉपी!'' बच्चे बड़े मनोयोग से अपनी कल्पना को आकार और रंग दे रहे थे। उर्मिला को कुछ भी बनाना नहीं आ रहा था–यही उसकी चिंता और उदासी का विषय था। समझाने पर कि जैसा आता है वैसा बनाओ–उर्मिला कागज़ पर कुछ रेखाएं खींचने लगी। मैंने उसका विश्वास बनाए रखा। ''मैऽऽम, इनका नाम भी लिखना है?'' कावेरी का ''मैऽऽम'' बोलने का अंदाज़ मुझे अच्छा लगता है। उसके अंतिम 'म' में अंत्य 'अ' का लोप नहीं होता। मेरे 'हां जी' कहते ही चीज़ों के नाम पूछने का सिलसिला शुरू हो गया– बोतल कहां लिखा है?/बस्ता कहां लिखा है?/खिड़की कहां लिखा है?/मेज़ लिखना नहीं आता।/किताब कैसे लिखें? आदि। बच्चों की यह जिज्ञासा और उत्साह ही उनके शुरुआती पढ़ने-लिखने की नींव बना रहा था।

सभी बच्चों ने जब चित्र बना लिए, उनमें रंग भर दिए और नाम भी लिख दिए (दो-तीन बच्चों ने नाम नहीं लिखे) तो मैं बोर्ड के पास आई कि अब इन शब्दों को मिटाकर कुछ और काम किया जाए। ''मैऽऽम, मेरा नाम लिख दो। मुझे नहीं आता।'' कावेरी मनुहार भरे अंदाज़ में बोली। मैंने उसका नाम बोर्ड पर बड़े-बड़े अक्षरों में लिख दिया और अंगुली रखकर उसे पढ़ा भी। फिर कावेरी से पढ़ने के लिए कहा तो उसने झट से पढ़ दिया लेकिन मालूम था कि उसने जो सुना उसे दोहरा भर दिया। उसे तो अपना नाम लिखने की जल्दी थी। कक्षा एक के बच्चों का मनोविज्ञान उन्हीं के साथ रहकर 'पढ़ा' था या उन्होंने ही पढ़ाया था इसलिए आगे क्या होगा, अनुमान लगा लिया था। अब सभी को अपने नाम लिखवाने थे। हालांकि मैंने उनके नाम का चार्ट बना रखा था जो मुझे अगले दिन कक्षा में लगाना था ताकि बच्चे अपना नाम पहचान सकें, पढ़ सकें और अपने दोस्तों के भी। मैंने उनसे कहा कि उनके नाम मैं खुद लिखूंगी ताकि आप जान सकें कि मुझे आपके नाम याद हुए हैं कि नहीं। मैं बोल-बोलकर उनके नाम लिखने लगी– कावेरी, काजल, कशिश, कविता... और मैं यहीं रुक गई। बच्चों से पूछा कि इन सभी नामों में क्या ख़ास बात है? अच्छा, सभी के नाम का पहला अक्षर देखिए! कुछ पता चला क्या? ''सभी में 'क' आया है।''– यह इकरा की आवाज़ थी। ''बहुत अच्छा, शाबाश!''– मैंने उसकी पीठ थपथपाई। क्या और शब्द बता सकते हैं जिसमें 'क' की आवाज़ हो? कबूतर, कार, कपड़े, काजल (''मैऽऽम, वो आंखों में लगाने वाला काजल), काला, कान, करेला, ककड़ी, कंचे.... मैं बोर्ड पर लिखती चली गई। बच्चों को अपनी कॉपी में सभी शब्द लिखने और उसमें 'क' पर घेरा लगाने के लिए कहा। सब बच्चे मशगूल हो गए। लक्षिता अपनी कॉपी दिखाने लाई। उसने 'कबूतर' शब्द का सिर्फ़ 'क' लिखा हुआ था। मैंने कहा, '' लक्षिता, 'कबूतर' लिखकर घेरा लगाओ।

'' लिखा तो है!''– लक्षिता ने 'क' की ओर अंगुली से संकेत किया।

''यह तो 'क' लिखा है।''

लक्षिता ने 'क' पर अंगुली रखी और ज़ोर देकर कहा, '' नहीं, ये 'क' कबूतर लिखा तो है! देखो तो।'' यह मेरा तीसरा सबक था।

सबक एक, दो और तीन हमारी भाषाओं की कक्षाओं का चरित्र उद्घाटित करते हैं। आप यह कह सकते हैं कि 'अ' से अनार वाली किताब और 'आ' से अनार वाली कॉपी कहने में क्या ख़तरा हो सकता है। ख़तरा है और बड़ा भारी ख़तरा है। पहला ख़तरा तो यह कि बच्चे इस भ्रम को 'पाल लेंगे' के 'क' से केवल 'कबूतर' ही होता है, काजल, कार, कविता, केला नहीं। बच्चे के लिए 'क' की आकृति 'कबूतर' का अर्थ देती है, 'क' से बनने वाले बाकी शब्दों का क्या होगा? दूसरा ख़तरा यह कि बच्चे हिंदी की किताब और कॉपी को केवल 'अ'/'आ' से ही जोड़कर देख रहे हैं। इसका एक अर्थ यह भी है कि हिंदी भाषा की कक्षा में केवल 'वर्णमाला' ही रटाई जा रही है और वह भी क्रम में जबकि इस स्तर पर बच्चों को वर्णमाला के क्रम से क्या लेना-देना? वे तो अपनी भाषा में अपनी बात कहना जानते हैं। वे किसी एक ध्वनि का प्रयोग नहीं करते बल्कि संवाद करते हैं। चलिए, ये तो बच्चे हैं! बताइए, हम में से कितने व्यक्तियों को वर्णमाला क्रम से याद है? अगर याद नहीं भी है तो क्या हम भाषा का प्रयोग नहीं कर पा रहे? तीसरा ख़तरा यह कि बच्चे भाषा की कक्षा में निरर्थक कवायद कर रहे हैं, क्योंकि 'अ/आ/क/प/च' आदि का कोई अर्थ नहीं है। ये वर्ण बच्चों को न तो कोई अर्थ ही दे पाते हैं और न ही सीखने का आनंद। चौथा ख़तरा यह कि बच्चे वर्णमाला की दुनिया में उलझकर सार्थक तरीक़े से न तो पढ़ना-लिखना सीख पाएंगे और न ही भाषा सीखने की उनकी जन्मजात क्षमता की लाभ उठाते हुए उनकी भाषा को समृद्ध से समृद्धतर बनाया जा सकता है। पांचवां ख़तरा यह है कि हम प्राथमिक स्तर पर, विशेषत: कक्षा एक और दो में भाषा सीखने-सिखाने के उद्देश्यों से भटक जाएंगे। इस स्तर पर भाषा सीखने-सिखाने का उद्देश्य है– 'बच्चों में अपने अनुभव और विचार बताने की इच्छा और उत्सुकता जगाना, बच्चों में दूसरों की बात सुनने में रुचि और धैर्य पैदा करना, उनसे सुनी बात पर टिप्पणी दे पाना, सुनी और पढ़ी कहानियों और कविताओं से अपने अनुभव संसार को जोड़ पाना और उसके बारे में बात करना, चित्रकारी को स्वयं की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाना' आदि। (प्रारंभिक स्तर की कक्षाओं का पाठ्यक्रम, एनसीईआरटी, 2006 : 13-14) यदि इन उद्देश्यों को गौर से देखें तो यह स्पष्ट होता है कि इनमें भाषा-प्रयोग पर विशेष बल दिया गया है, मात्र वर्णमाला सिखाने पर नहीं! गहराई से विश्लेषण करने पर और अधिक ख़तरे नज़र आएंगे। यह आप सोचिए!

यदि दो-ढाई साल के बच्चों का गहन अवलोकन किया जाए तो कहा जा सकता है कि विद्यालय आने से पूर्व बच्चे अपनी भाषा का प्रयोग करना बखूबी जानते हैं। वे अपनी पसंद-नापसंद, खेल-खिलौनों, माता-पिता, भाई-बहनों, चीज़ों, घटनाओं के बारे में सिलसिलेवार तरीक़े से बात करते हैं। इतना ही नहीं वे अभाषिक संकेतों को भी समझने और उनके अनुरूप व्यवहार करने की क्षमता रखते हैं। अपनी मनपसंद चीज़ न मिलने पर वे प्रतिक्रिया भी व्यक्त करते हैं और उसे प्राप्त करने के पक्ष में अपना तर्क़ भी प्रस्तुत करते हैं। 'चूंकि बच्चे अच्छी-ख़ासी विकसित भाषिक व्यवस्था के साथ ही स्कूल आते हैं, इसलिए इसे ध्यान में रखते हुए ही स्कूली पाठ्यचर्या में भाषा शिक्षण के उद्देश्य तय किए जाने चाहिए। सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य बच्चे को इस प्रकार से साक्षर बनाना है कि बच्चा समझने के साथ पढ़ने व लिखने की क्षमता हासिल कर सके। साथ ही द्विभाषिकता और पराभाषिक चेतना को बढ़ावा देना हमारा प्रयास होना चाहिए। साथ ही विद्यार्थियों में विनम्रता व नम्यता की क्षमता विकसित करना ज़रूरी है ताकि वे सभी प्रकार की स्थितियों में सहिष्णुता व आत्मसम्मान के साथ संवाद स्थापित करने की क्षमता प्राप्त कर सकें। यद्यपि भाषा-विज्ञानी सिद्धांतों और अनुप्रायोगिक भाषा विज्ञान की अंत:क्रिया ने कई तरह की शिक्षण पद्धतियों व सामग्री को जन्म दिया, लेकिन भाषा की कक्षाएं अभी भी बोरियत भरी व उबाऊ बनी हुई हैं और व्यवहारवादी ढांचे का ही अनुसरण कर रही हैं। वे भाषाएं जिनसे बच्चा परिचित होता है यानी जिनके साथ स्कूल में प्रवेश करता है उनमें विशेष प्रगति नहीं कर पाता...।' (भारतीय भाषाओं का शिक्षण, आधार पत्र , एनसीईआरटी, 2009 : 9)

भाषा सीखने-सिखाने के उद्देश्यों में एक

महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि बच्चे अक्षरों को जोड़कर नहीं बल्कि समझकर पढ़ें, अपने आस-पास मौजूद लिखित सामग्री से अर्थ ग्रहण कर सकें, पढ़ने की प्रक्रिया को अपने दैनिक जीवन से जोड़ सकें और लिखने का प्रयास कर सकें। यह तथ्य भी आपके अनुभव जगत का हिस्सा रहा होगा कि दो-ढाई साल के बच्चे अपने संपर्क में आने वाली चीज़ों को पहचानने की क्षमता रखता है। बाज़ार में या अपनी गली में आस-पास की दुकानों में रखी ढेर सारी चीज़ों में से अपनी पसंद के बिस्कुट के पैकेट को झट से पहचानकर कहता है– पारले जी! किसने उसे पढ़ाया, सिखाया कि यह पारले जी है, गुड डे नहीं। बच्चा 'पारले जी' का न तो 'प' जानता है और न ही 'र/ल/ए की मात्रा/ज/ई की मात्रा! फिर बच्चा कैसे 'पढ़' लेता है? इतना ही नहीं वह अंकल चिप्स, कुरकुरे, टॉफी, माज़ा, मैगी आदि को भी पहचानकर पूर्ण आत्मविश्वास के साथ उनका नाम लेता है। यह कैसे संभव होता है कि बच्चा वर्णमाला जाने बिना बच्चे कई तरह की 'चॉकलेट्स'/ आइसक्रीम में से अपनी पसंद की चॉकलेट या आइसक्रीम को भी पहचान लेता है? कैसे एक बच्चा अपनी पसंद की क़िताब को चुन लेता है और उसे पढ़कर सुनाने के लिए कहता है? एक बार मैट्रो में लगभग ढाई-तीन साल का बच्चा किसी बात पर अपनी मां से नाराज़ हो गया और सीट से उतर कर नीचे बैठ गया। मां ने उसे मनाने की बहुत कोशिश की, लेकिन वह माना नहीं और रोने लगा। मां ने एप्पल जूस की बोतल की तरफ इशारा किया और कहा, ''देखो, इस पर लिखा है अंकित अच्छा बच्चा नहीं है।'' बच्चे के रोने के क्रम में व्यवधान पड़ा। उसने अपनी मां की तरफ शंकाभरी नज़रों से देखा और कहा कि सच्ची बताओ- इस पर क्या लिखा है। मां ने वही बात दोहरा दी। बच्चे ने सिर हिलाकर बात को मानने से इनकार कर दिया और कहा, '' ये लिखा है? नहीं आप झूठ बोल रही हैं।'' अब मां ने बात को थोड़ा बदलकर कहा, '' इसमें लिखा है कि हमें रोना नहीं चाहिए।'' लेकिन बच्चा मानने को तैयार नहीं था। हारकर मां ने पढ़ा– एप्पल जूस! तब जाकर बच्चे को भरोसा हुआ। यह घटना क्या दर्शाती है? यही कि बच्चे जिन चीज़ों को बार-बार देखते हैं, उनके संपर्क में आते हैं– धीरे-धीरे उनसे स्थायी रिश्ता बना लेते हैं। सवाल उठता है– कैसे?

प्रारंभिक साक्षरता यानी शुरुआती पढ़ना-लिखना जो कक्षा एक और दो में पढ़ना-लिखना सिखाने की प्रक्रिया से संबद्ध है– इन्हीं मुद्दों पर गहराई से विमर्श करती है। प्राय: हमारी कक्षाओं में पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया का आगाज़ वर्णमाला से होता है। हमें लगता है कि बच्चे को एक बार वर्णमाला 'आ जाए' तो वह पढ़ना-लिखना सीख जाएगा लेकिन 'क' 'कबूतर' वाला उदाहरण यह ताकीद करता है कि वर्णमाला पद्धति के अनेक ख़तरे हैं। वर्णमाला पद्धति के समर्थन में अकसर यह तर्क दिया जाता है कि पहले बच्चे वर्ण पहचानेंगे। उन्हें पढ़ेंगे, फिर उन वर्णों से बनने वाले शब्दों को पढ़ना सीख जाएंगे। इसके बाद वे वाक्य पढ़ना सीख लेंगे। आइए, यह कोशिश भी करके देखते हैं। उदाहरण के लिए नीचे दिए गए वर्णों को को पढ़िए–

त ज ल प र म स
रल जत लम सप मस
कु नि जे डा पो मौ
कुनि निजे डापो पोमौ
कमड़ी लाजा तीबना लीच ईग।

आपने पहली पंक्ति में लिखे वर्णों को पहचानकर पढ़ लिया होगा। लेकिन अर्थ मिला? नहीं। आप दूसरी पंक्ति में उन वर्णों को जोड़कर बनाए गए शब्दों को उच्चरित कर सकते हैं, लेकिन अर्थ मिला? नहीं! तीसरी पंक्ति में मात्रा वाले वर्णों को और चौथी पंक्ति में मात्रा वाले शब्दों को भी आप उच्चरित भर कर सकते हैं। अर्थ यहां भी नहीं मिलेगा। पांचवीं पंक्ति में 'वाक्यनुमा' कुछ दिया गया है। आप इसे भी भली प्रकार से बोल देंगे लेकिन अर्थ मिला क्या? नहीं न! संभव है कि अगर आप बहुत गौर से देखें तो 'कमड़ी' बोलते ही आप तुरंत उसे 'मकड़ी' के रूप में पढ़ें और 'लाजा' बोलते ही उसे 'जाला' के रूप में पढ़ें। यहां आपके पूर्व अनुभव मदद कर रहे हैं, क्योंकि बचपन से ही हम यह सुनते आए हैं कि मकड़ी जो रेशे से बनाती है उसे जाल या जाला कहते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि आप 'मकड़ी' के साथ 'जाला' शब्द का संबंध बिठाते हैं जैसे गाय के साथ दूध का, नदी के साथ पानी का, और भी बहुत कुछ! इसका तात्पर्य यह है कि केवल वर्णों या अक्षरों या शब्दों को पहचान कर उन्हें उच्चरित करना पढ़ना नहीं है। पढ़ना तो समझना है। हम कई बार बच्चों से कहते हैं कि यह कहानी पढ़ो और बताना कि क्या समझ आया। जब हम कहानी पढ़कर समझने की बात करते हैं तो दरअसल हम लिखे हुए को उच्चरित करने को महत्व नहीं दे रहे बल्कि पढ़कर जो अर्थ बच्चे ने ग्रहण किया है उसे महत्व दे रहे हैं। अब एक बार और नीचे दिए गए अक्षरों को पढ़िए–

क ल शा म मे रे घ र ए क बि ल्ली
आ ई औ र सा रा दू ध पी ग ई।

भले ही ये अक्षर अलग-अलग लिखे गए हैं लेकिन आपकी आंखें इन्हें तुरंत सही रूप में जोड़ते हुए स्वयं ही पढ़ लेंगी– कल शाम मेरे घर एक बिल्ली आई और सारा दूध पी गई। इन अक्षरों को पढ़ते समय आपकी दृष्टि क्या हर अक्षर पर टिकी थी? नहीं। एक दृष्टि में अनेक शब्द स्वत: ही आ गए होंगे। इतना ही नहीं, 'बिल्ली' के बाद वाला शब्द 'आ' भले ही अगली पंक्ति में लिखा है लेकिन आपके भाषा-प्रयोग संबंधी पूर्व अनुभवों ने स्वत: ही 'आई' शब्द का अनुमान लगा लिया होगा। चूंकि संदर्भ 'बिल्ली' का है इसलिए आपको 'दूध पी गई।' पढ़ने में भी अपने पूर्व अनुभवों की मदद मिली होगी, क्योंकि हम बचपन से ही 'बिल्ली' और 'दूध' के बीच संबंध जोड़ते आए हैं।

इस चर्चा से इतना तो तय है कि बच्चे अगर 'क, ख, ग, प, त, ल' आदि रट भी लें या बोर्ड से उतारकर अपनी कॉपी में लिख भी लें तो यह रटा हुआ किसी अन्य लिखित या छपी सामग्री को पढ़ने में शायद ही मदद करे। एक और बात जो कई शिक्षकों, अभिभावकों को ठीक लगती है, वह यह कि शुरू में बच्चों को बिना मात्रा वाले शब्द पढ़ने-लिखने को दें। लेकिन क्या आपने सोचा है कि ढाई-तीन साल का बच्चा जब बोलता है तो क्या सिर्फ बिना मात्रा वाले शब्द बोलता है? क्या उसके बोलने में क्रम में पहले बिना मात्रा वाले दो अक्षर वाले शब्द, फिर बिना मात्रा वाले तीन अक्षर वाले शब्द, उसके बाद मात्रा वाले दो अक्षर वाले शब्द और इसी प्रकार और अधिक अक्षर वाले शब्दों और अधिक मात्रा वाले शब्दों का प्रयोग होता है? नहीं न! बच्चे जब बोलते हैं तो उनके लिए कही जाने वाली बात

महत्वपूर्ण होती है, अक्षरों की संख्या नहीं और न ही मात्रा। जब बच्चा कहता है– 'मैं दो चॉकलेट लूंगी।' तो इसमें चार अक्षर वाले शब्द भी है और विभिन्न मात्रा वाले भी। उसके द्वारा कहे गए वाक्य की संरचना भी व्याकरण सम्मत है। यहां कहा गया वाक्य सार्थक है, उसका एक संदर्भ है। आपको बच्चों की बातचीत से ऐसे अनेक साक्ष्य मिल जाएंगे जहां अक्षरों की संख्या और मात्रा का नियंत्रण नज़र नहीं आएगा। फिर पढ़ने की शुरुआत एक ऐसे तरीक़े से क्यों की जाती है जिसमें न तो संदर्भ होता है और परिणामत: न ही अर्थ!

दरअसल, हम बच्चों की भाषा सीखने की क्षमताओं में विश्वास नहीं रख पा रहे हैं। अब तक के उदाहरणों से इतना तो ज्ञात हो ही गया होगा कि बच्चे स्वभावत: भाषा अर्जित करते हैं, भाषा की नियमबद्ध व्यवस्था को आत्मसात कर लेते हैं, उन्हें कोई सिखाता नहीं है, बल्कि जब हम उन्हें भाषा सिखाने के नाम पर व्याकरण पढ़ाना शुरू करते हैं तो एक प्रकार से उनकी क्षमताओं की अनेदखी कर रहे होते हैं और भाषा की कक्षा को बोझिल। 'जिस तेज़ी से एक सामान्य शिशु महज़ तीन साल तक की उम्र में ही केवल एक भाषा में नहीं, बल्कि एक से अधिक भाषाओं में भाषिक क्षमता हासिल कर लेता है, उससे यही निष्कर्ष निकलता है कि हम संभवत: अपने साथ भाषा-क्षमता लिए ही जन्म लेते हैं। ...यह बड़ा ही शोचनीय है कि हमारे शिक्षा योजनाकार व भाषा योजनाकार बच्चे में अंतर्निहित इतनी महत्वपूर्ण संभावना को नज़रअंदाज़ करते आए हैं। खासकर भारत जैसे देश में जहां अधिकांश बच्चे बहुभाषिक संभावना के साथ स्कूल आते हैं, लेकिन स्कूल आना धीरे-धीरे छोड़ देते हैं। बेशक इसके कई कारण हैं लेकिन इनमें से एक कारण है– स्कूल की भाषा, उनके घर एवं पड़ोस की भाषा से खुद को जोड़ नहीं पाती। अधिकांश बच्चे स्कूल पढ़ने और लिखने की शून्य क्षमता के साथ के स्तर पर छोड़ते हैं, यहां तक कि अपनी भाषा में भी। इसके लिए कई सामाजिक-राजनीतिक कारण ज़िम्मेदार हैं, जो हमारी पूरी शिक्षा व्यवस्था को ही खोखला किए हुए हैं लेकिन कुछ अन्य कारण, जो इस न्यूनतम स्तर की भाषा क्षमता तक को हासिल नहीं कर पाने के लिए ज़िम्मेदार हैं, वे हैं– भाषा की संरचना एवं प्रकृति के साथ-साथ भाषा सीखने-सिखाने की प्रक्रिया की समझ का अभाव ...।' (भारतीय भाषाओं का शिक्षण, आधार-पत्र, एनसीईआरटी, 2009 : अ) यह आवश्यक है कि हम बच्चों को सीखने का माहौल दें।

अब सवाल यह उठता है कि आखिर पढ़ना क्या है? क्या पढ़ने का अर्थ है– लिपि-चिह्नों की पहचान करना? अक्षरों को पहचानते हुए जोड़-जोड़कर उच्चरित करना? प्रवाहपूर्ण तरीक़े से शब्दों, वाक्यों को पढ़ लेना? लिखित सामग्री से अपने लिए कोई अर्थ निर्मित कर पाना? छपी या लिखित सामग्री को किसी संदर्भ में अथवा अपने अनुभवों के साथ जोड़ पाना? जो पढ़ा है उस पर अपनी प्रतिक्रिया या टिप्पणी दर्ज़ करना? शब्द अथवा वाक्य के शुरू के हिस्से को देखकर शेष अंश के बारे में अनुमान लगाकर पढ़ना? यदि हम इन बिंदुओं को अलग-अलग रूप में देखेंगे तो 'पढ़ना' के बारे में पूर्ण रूप से कुछ नहीं कह पाएंगे या 'पढ़ना' को न्यायोचित तरीके से परिभाषित नहीं कर पाएंगे। दरअसल, पढ़ने की प्रक्रिया में अनेक कुशलताएं शामिल हैं, जैसे– अक्षर-ध्वनि संबंध बना पाना, भाषा विशेष की संरचनागत विशेषताओं को पकड़ पाना, संदर्भ और अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर मुद्रित सामग्री से अर्थ ग्रहण करना। पढ़ने की इस पूरी प्रक्रिया में जो सबसे महत्वपूर्ण तत्व है, वह अर्थ है। इस प्रकार पढ़ना है समझना!

दरअसल, पढ़ने की प्रक्रिया तभी से शुरू हो जाती है जब बच्चे अपने परिवेश में उपलब्ध प्रिंट या लिखत को पहचानते हैं। इसका एक अर्थ यह भी है कि चित्रों को पढ़ना यानी उनका वर्णन करना भी एक तरह से पढ़ना ही है, पढ़ने की तैयारी नहीं! 'पारले जी' का उदाहरण यह स्पष्ट करता है कि बच्चे अनेक बार बिना वर्णमाला जाने हुए भी छपी हुई सामग्री से अर्थ ग्रहण कर लेते हैं। यह प्रक्रिया संपन्न कैसे होती है? यह सारी प्रक्रिया हमारे मस्तिष्क में घटित होती है। हमारे मस्तिष्क में अनेक प्रकार की स्मृतियां भंडारित होती रहती हैं, जैसे– श्रव्य (सुनना) स्मृति, चाक्षुष (देखना) स्मृति, स्पर्श स्मृति, घ्राण (सूंघना) स्मृति आदि। जब आप पहली बार किसी व्यक्ति से मिलते हैं तो उससे संबंधित किसी प्रकार की स्मृति आपके पास यानी आपके मस्तिष्क में नहीं है, क्योंकि उन्हें देखकर कोई नाम (या नाम की ध्वनि) आपके मस्तिष्क में नहीं कौंधती लेकिन जब आपके भाई या कोई अन्य व्यक्ति आपसे उन्हें मिलवाता है और कहता है कि श्री विनोद वर्मा जी से मिलिए तो आपके मस्तिष्क में दो तरह की स्मृतियां भंडारित हो जाती हैं– श्रव्य और चाक्षुष यानी ध्वनि और चित्र। आप उस नये व्यक्ति की तस्वीर और उसके नाम (की ध्वनि) के बीच संबंध स्थापित करते हैं। वह व्यक्ति अपने संपूर्ण व्यक्तित्व के रूप में आपके मस्तिष्क में अपना स्थान बना लेता है। भाषा की दुनिया में इसे ध्वनि-संकेत संबंध कहा जाता है। अब कभी आप कहीं उस व्यक्ति को देखते हैं तो उसे पहचान जाते हैं और कहते हैं– नमस्ते श्री विनोद जी/आइए, विनोद जी/ और कैसे हैं विनोद जी आदि। यही प्रक्रिया बच्चों के भी मस्तिष्क में घटित होती है यानी 'पारले जी' के पैकेट के पूरे चित्र और उसके नाम या आवाज़ के बीच संबंध स्थापित होता है। अगली बार बच्चा जब उसे देखता है तो पहचानने की कोशिश करता है, दादा या दादी या कोई अन्य व्यक्ति जब बार-बार एक वस्तु विशेष को किसी नाम विशेष अथवा ध्वनि विशेष के साथ जोड़ते या पुकारते हैं तो बच्चे के मस्तिष्क में यह ध्वनि-संकेत संबंध दृढ़ होता जाता है। यही कारण है कि बच्चा 'पारले जी' का 'प', 'र' या 'ल' की पहचान किए बिना ही पैकेट को 'पढ़' लेता है। यह उदाहरण पढ़ना सिखाने के शिक्षा-शास्त्र को भी उजागर करता है। पढ़ने के लिए समझना ज़रूरी है और क्रम से वर्णमाला सिखाने के स्थान पर सार्थक सामग्री, जो बच्चों के अनुभव संसार का हिस्सा है, का प्रयोग आवश्यक है।

इस चर्चा से यह तो तय है कि पढ़ना केवल लिपि-चिह्नों को पहचानने और उन्हें उच्चरित करने की प्रक्रिया नहीं है। पढ़ने की प्रक्रिया के बारे में अब तक जो शोध हुए हैं उनके आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि पढ़ना एक रचनात्मक प्रक्रिया है, क्योंकि पढ़ने वाला पाठ्य सामग्री को समझने के लिए अपने पूर्वज्ञान, पूर्व अनुभव का प्रयोग करता है। एक ही पाठ्य-सामग्री अलग-अलग बच्चों के लिए अलग-अलग अर्थ संप्रेषित कर सकती है। इतना ही

नहीं अलग-अलग सामाजिक-सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के बच्चों के लिए पाठ्य-सामग्री से संघर्ष करने के तरीक़े भी अलग हो सकते हैं। 'अब यह माना जाता है कि पढ़ने की प्रक्रिया में अंकित सूचना की बानगी ग्रहण करना महत्वपूर्ण है। हमारी आंखें जब अक्षरों, विराम-चिह्नों, शब्दों और शब्दों के बीच छोड़ी गई जगहों का मुआयना करती हैं तो हमारा मस्तिष्क इस ग्राफिक (हाथ से लिखी गई या छपी हुई)सामग्री की संपूर्ण मात्रा पर ध्यान नहीं देता। यदि ऐसा होता तो छोटी-छोटी सूचना पर गौर करने की मस्तिष्क की क्षमता पर अत्यधिक बोझ पड़ता और अधिकांश लोग जिस रफ़्तार से पढ़ते हैं वह असंभव हो जाती। पारंपरिक विधियों से पढ़ना सीखने वाले कई बच्चों के साथ यही होता है। वे हर शब्द को अक्षरों की छोटी इकाइयों में तोड़ते हैं और इस तरह शब्दों का अर्थ ग्रहण करने की मस्तिष्क की क्षमता पर बहुत ज़्यादा बोझ डाल देते हैं। एक प्रवीण पाठक की आंखें ऐसा बोझ नहीं पड़ने देतीं क्योंकि वे पन्ने पर अंकित ग्राफिक सूचनाओं के एक सीमित, चुने हुए अंश से जूझती हैं। प्रवीण पाठक किसी अक्षर के पूरे आकार पर ध्यान नहीं देता है, न ही वह एक शब्द के सारे अक्षरों या एक वाक्य के सारे शब्दों पर ध्यान देता हैं। पढते समय उसकी आंखें अंकित सामग्री के छोटे-से अंश पर गौर करती हैं। शेष भाग वह समझदार अनुमान के ज़रिए ग्रहण करता है। अनुमान का आधार होते हैं– अक्षरों की आकृतियां, शब्द, उनके अर्थ, उनके संयोजन और आम दुनिया से पाठक का पहले से मौजूद परिचय। पढ़ना एक एकाकी प्रक्रिया नहीं है, उसमें कई प्रक्रियाएं शामिल हैं। पढ़ते वक्त भाषा के उपयोग से जुड़े तीन तरह के संकेत हमारे ध्यान में आते हैं– अक्षरों की आप्तियां और उनसे जुड़ी ध्वनियां, वाक्य विन्यास (जैसे विशेषण का संज्ञा से पहले आना) और शब्दों के अर्थ। भाषा का इस्तेमाल करते-करते हम इन तीनों तरह के संकेतों से जुड़ी कुछ अपेक्षाओं के आदी हो जाते हैं। ये अपेक्षाएं ही अनुमान या भविष्यवाणी के आधार पर छपी हुई सामग्री का वह अंश पूरा करने में हमारी मदद करती हैं जिसे हमारी तेज़ रफ़्तार आंखों ने छोड़ दिया था।' (कृष्ण कुमार, 2009:) इस प्रकार यह बात साफ हो जाती है कि एक कुशल पाठक के लिए 'डिकोडिंग' यानी शब्दों को पहचानना और उसे उच्चरित करना अधिक महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण है तो छपी सामग्री से निरंतर संवाद करते हुए अर्थ ग्रहण करना।

बच्चों को पढ़ना सिखाने के लिए ज़रूरी है कि उन्हें अधिक से अधिक प्रिंट समृद्ध परिवेश उपलब्ध कराया जाए और अधिक से अधिक रोचक बाल साहित्य को उलटने-पलटने-पढ़ने के अवसर मुहैया कराए जाएं। हम सभी अलग-अलग उद्देश्यों के लिए पढ़ते हैं। कोई नई जानकारी प्राप्त करने के लिए पढ़ता है तो कोई साहित्य पढ़कर आनंद लेता है। अलग-अलग उद्देश्यों के लिए पढ़ने के लिए पठन सामग्री में भी विविधता होनी चाहिए। बचपन में दादी-नानी से कहानी सुनाने की ज़िद करने वाले बच्चे जब विद्यालय आते हैं तो न जाने कहानी कहां खो जाती है। बच्चे अपनी भी ढेर सारी कहानियां बनाते हैं। उनमें राजा-रानी भी हैं तो भूत भी कम नहीं हैं। परियों के जादू से तो वे स्वयं को मुक्त ही नहीं हो पाते। परियों की जादू की छड़ी का इस्तेमाल करते हुए वे आपको भी मेंढक, चूहा बना सकते हैं और खाने-पीने की तरह-तरह की चीज़ें पल में हाज़िर कर सकते हैं। दरअसल कहानी बच्चों के लिए एक सार्थक दुनिया की रचना करती है। अत: कक्षाओं में कहानी, कविता, चित्रकथा आदि का भंडार होना चाहिए।

एक दिन मैं कक्षा एक के बच्चों के लिए ढेर सारी किताबें ले गई। बाल पत्रिका *फिरकी* बच्चों की जो कक्षा एक और दो के बच्चों के लिए एनसीईआरटी द्वारा प्रकाशित की जाती है और बाल साहित्य भी! मैंने बड़े चाव से बच्चों से कहा, ''आज हम एक कहानी पढ़ेंगे।'' और मैं *फिरकी* पत्रिका में से कहानी सुनाने लगी– सांप और मेंढक की। कहानी ख़त्म होते ही मैं आगे कुछ बात शुरू करती, स्नेहा ने झट से मेरे हाथ से पत्रिका ले ली। वह तथा पलक उसके पन्ने पलटने लगे, चित्रों को निहारने लगे और पढ़ने की कोशिश करने लगे। यह वाकया दर्शाता है कि बच्चों में पढ़ने की स्वाभाविक ललक होती है। हमारे पढ़ना सिखाने की अनुचित पद्धतियां अनेक बार बच्चों में पढ़ने के प्रति अरुचि उत्पन्न कर देती है। हमें इससे बचना होगा। बच्चों के साथ चित्रों, कहानियों, चित्रकथाओं पर खूब बात कीजिए, उनकी बात सुनिए और उन्हें कहानी अपने तरीक़े से गढ़ने के अवसर दीजिए। बार-बार सुनी-सुनाई गई कहानियों, कविताओं को जब बच्चे प्रिंट रूप में देखेंगे तो अनुमान लगाकर पढ़ने की कोशिश करेंगे। इसके लिए कहानी, कविताओं या बाल साहित्य का चयन बहुत सावधानी से करना होगा। एनसीईआरटी ने अपने प्रारंभिक साक्षरता कार्यक्रम के अंतर्गत अभी हाल ही में अपनी वेबसाइट पर प्राथमिक कक्षाओं में पढ़ने वाले बच्चों के लिए रोचक और उपयोगी बाल साहित्य की सूची दी है। हमारे शिक्षक साथी, अभिभावक, पुस्कालयाध्यक्ष आदि उस प्रस्तावित सूची में से अपनी आवश्यकता के अनुसार बच्चों के लिए बाल साहित्य ले सकते हैं। एक अच्छे बाल साहित्य की रचना करना और अच्छे बाल साहित्य का चयन करना– दोनों ही चुनौतीभरे कार्य हैं।

बच्चों को पढ़ने के सार्थक अवसर देना उनमें पढ़ने की संस्कृति का विकास करेगा। उन्हें पढ़ी गई या पढ़ी जा रही सामग्री के बारे में अनुमान लगाने, तरह-तरह से व्याख्या करने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। इस संदर्भ में लेखिका नटाली बेबीट का कहना है कि एक क़िताब जब छप जाती है तो गिरगिट की तरह व्यवहार करती है। इसका यही अर्थ है कि बच्चे अपनी समझ के आधार पर पाठ्य-सामग्री को समझते हैं और उसका विश्लेषण करते हैं। अत: एक भाषा शिक्षक का यह दायित्व होगा कि वह बच्चों को सार्थक पठन के भरपूर अवसर दें ताकि वे कई उद्देश्यों के लिए निरंतर पढ़ते रहें और कुशल पाठक बन सकें। पढ़ने के संदर्भ में पॉल फेरे का यह कथन बेहद सटीक है कि जब मैं पढ़ता हूं तब दुनिया को समझ रहा होता हूं और जब दुनिया को समझ रहा होता हूं तो खुद को भी समझ रहा होता हूं।' हमें अपने बच्चों को भी यह अवसर देना होगा ताकि वे स्वयं को जान सकें और दुनिया को भी। इसके लिए सबसे ज़्यादा ज़रूरी है– बाल मन को समझना, उनकी दुनिया को समझना! ❑

(लेखिका एनसीईआरटी के प्रारंभिक शिक्षा विभाग में एसोसिएट प्रोफेसर हैं।
ई-मेल : ushasharma1730@yahoo.com)

हैशटैग

हैशटैग किसे कहते हैं?

हैशटैग दूरसंचार के क्षेत्र में काम आने वाला वह शब्द अथवा पदावली है जिसके पूर्व ₹ चिह्न का प्रयोग होता है। यह 'मेटा डाटा' टैग का ही एक रूप है। हैशटैग का सर्वप्रथम प्रयोग नेटवर्क के अंदर समूहों और विषयों तथा व्यक्तिगत संदेशों को चिह्नित करने यानी लेबल लगाने के लिए किया गया था। वर्ष 2009 में ट्विटर ने ट्वीट किए गए संदेशों को परस्पर 'लिंक' करने के लिए 'हैशटैग' का प्रयोग करना शुरू किया ताकि उसके ज़रिये ट्वीट किए गए संदेशों पर शीघ्र नज़र पड़ सके। 'हैशटैग की कोई निश्चित परिभाषा नहीं है और न ही किसी 'यूज़र' (उपयोगकर्ता) अथवा उपयोगकर्ताओं के समूह द्वारा पंजीकृत अथवा नियंत्रित है। इसे अनेक उद्देश्यों के लिए प्रयोग किया जा सकता है। 'हैशटैग' का उपयोग विनोद, उत्सुकता, दुख अथवा अन्य इसी प्रकार के मनोभावों को अभिव्यक्त करने के लिए भी किया जा सकता है।

ट्वीट में हैशटैग का उपयोग ट्वीटस के वर्गीकरण के लिए किया जाता है। इसे कहीं भी ट्वीट के आरंभ में, मध्य में अथवा अंत में प्रयोग किया जा सकता है। यदि कोई सार्वजनिक एकाउंट पर 'हैशटैग' के साथ ट्वीट करता है तो जो भी व्यक्ति उस 'हैशटेग' के साथ उसे खोजेगा यानी 'सर्च' करेगा, तो उसे वांछित ट्वीट तक पहुंचने में भी आसानी होगी।

'हैशटैग' का प्रयोग विषयों और पदावलियों की तलाश आसान बना देता है। उनको आसानी से 'क्लिक' करके 'लिंक' किया जा सकता है। लोगों को अपनी पसंद का 'पोस्ट' (सामग्री) ढूंढ़ने में आसानी होती है। हैशटैग को क्लिक करने पर उस पर डाली गई तमाम सामग्री सरलता से देखी/पढ़ी जा सकती है।

प्रस्तावित सरोगेसी कानून क्या है?

सरोगेसी का अर्थ है बच्चा चाहने वाले दंपत्ति के लिए अन्य महिला द्वारा गर्भधारण करना और बच्चे को जन्म देना। आम भाषा में इसे किराए की कोख भी कहा जाता है। यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें एक महिला किसी अन्य के लिए बच्चे को अपने पेट में पालती है और फिर उसे जन्म देती है। 'सरोगेट' महिला बच्चे की आनुवांशिक मां हो भी सकती है और नहीं भी। अतएव, यह पारंपरिक 'सरोगेसी' अथवा गर्भाविधि 'सरोगेसी', दोनों ही प्रकार से हो सकता है। गर्भधारण कृत्रिम गर्भाधान अथवा अंत:गर्भाशय युक्ति अर्थात् आईसीआई के माध्यम से हो सकता है। गर्भाविधि (गेस्टेशनल) सरोगेसी के लिए प्रयोगशाला में पूर्व में विकसित भ्रूण के अंतरण की आवश्यकता होती है।

यह पद्धति प्राचीनकाल से चली आ रही है। चिकित्सा, औषधि और विधि के क्षेत्र में विश्वभर में जो भी प्रगति हुई है, उससे इस क्षेत्र में व्यापक परिवर्तन आया है। 'सेरोगेसी' एक मानव निर्मित प्रक्रिया है, जिसकी व्यवस्था प्रकृति ने नहीं की है। इससे नैतिक, वैधानिक और स्वास्थ्य संबंधी अनेक मुद्दे जुड़े हैं। विभिन्न धर्म और पंथ इस मुद्दे को अलग-अलग ढंग से देखते हैं। बहु-धार्मिक और बहु-सांस्कृतिक समाजों में एक समान कानून बनाना कोई सरल कार्य नहीं है।

इसके अतिरिक्त, इस बात की भी आशंका है कि इस पद्धति के अधिक उपयोग से महिलाओं का शोषण, वस्तु की तरह उपयोग और ज़ोर-ज़बरदस्ती बढ़ सकती है। किराए पर कोख देने वाली सरोगेट मां और आनुवंशिक अभिभावकों के बीच संविदा की वैधानिकता पर भी सवाल उठाए जा रहे हैं।

अपेक्षाकृत एक नया विषय होने के कारण 'असिस्टेड रिप्रोडक्टिव टेक्नोलॉजीज़ विधेयक* (2010) के प्रारूप पर व्यापक विचार-विमर्श की आवश्यकता महसूस की जा रही है। मीडिया की ख़बरों के अनुसार केंद्र इस कानून के प्रारूप पर व्यापक विचार-विमर्श के लिए एक विशेषज्ञ समिति गठित करेगा। समिति विभिन्न पक्षों द्वारा जताई गई चिंताओं पर विचार करेगी और इन मुद्दों के समाधान के संभावित तरीक़ों का पता लगाएगी। यह निर्णय हाल ही में योजना आयोग द्वारा की गई सिफ़ारिश के बाद लिया गया है। योजना आयोग ने कानून में व्यापक परिवर्तन का सुझाव देते हुए भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (आईसीएमआर) से इस संबंध में परामर्श की प्रक्रिया जारी रखने को कहा है। योजना आयोग एक प्रभावी कानून और नियामक ढांचा तैयार करने की दिशा में समिति की सहायता करेगा। योजना आयोग में विचार-विमर्श के दौरान प्रस्तावित कानून के विभिन्न प्रावधानों-यथा सरोगेट महिला के पर्याप्त संरक्षण का अभाव, पारदर्शिता का अभाव, विषय विशेषज्ञ को साथ लेकर परामर्शकारी प्रक्रिया आदि के बारे में सवाल उठाए गए थे।

एआरटी विधेयक का प्रारूप 2008 में तैयार किया गया था और तभी से यह अधर में अटका है। इसे 2010 में संशोधित किया गया, परंतु इसे अभी भी कानून मंत्रालय ने अनुमोदित नहीं किया है। उसके बाद ही यह मंत्रिमंडल की मंजूरी के लिए जाएगा।

अनुमानत: व्यावसायिक सरोगेसी भारत में एक बड़ा उद्योग बन चुका है, परंतु इसके नियमन के लिए कोई कानून नहीं है। इससे प्राय: ग़रीब महिलाओं का शोषण होता है। उनके स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभावों की प्राय: अनदेखी की जाती है। प्रस्तावित विधेयक कानून का रूप ले, इसके पूर्व उपर्युक्त सभी मुद्दों और विषयों पर व्यापक विचार-विमर्श की आवश्यकता है। ❑

* (साहचर्य प्रजननकारी प्रविधियां विधेयक) (यह औपचारिक अनुवाद नहीं है)

अपनी भाषा में शिक्षा का सवाल

● प्रियदर्शन

शिक्षा और भाषा का अन्योन्याश्रित संबंध है। जब यह संबंध टूटता है तो शिक्षा भी बिखरती है, भाषा भी घायल होती है। दुर्भाग्य से आज हमारे देश में यही हो रहा है। शिक्षा के माध्यम के तौर पर भारतीय भाषाएं बेदखल की जा रही हैं और उनकी जगह अंग्रेज़ी आ रही है

भाषा के बारे में इन दिनों हमने विचार करना काफी कम कर दिया है। जैसे यह मान लिया गया है कि बाकी सारी चीज़ों की तरह भाषा भी बस हमारे उपभोग की वस्तु है और उसका हम मनचाहा इस्तेमाल कर सकते हैं लेकिन उपभोग की जो वस्तुएं होती हैं, वे भी उपभोग करने वाले को बदलती हैं। भाषा के इस उपभोक्तावादी इस्तेमाल ने हमें बस उपभोक्ता बनाकर छोड़ दिया है। हम हर मौके के मुताबिक एक शब्द चुनते हैं और मौके के मुताबिक उसका इस्तेमाल कर आगे बढ़ जाते हैं। भाषा में स्मृति का जो तत्व है, जो उसकी ताक़त है, वह जैसे खोती जा रही है।

लेकिन यह भाषा के साथ ही नहीं, उन बहुत सारी दूसरी प्रक्रियाओं के साथ भी हो रही है जिनकी उंगली पकड़कर हमने अब तक ही सभ्यता गढ़ी। भाषा ने हमें बारीक़ी दी, चीज़ों के फर्क़ समझाए, उनकी परिभाषा तय की, उनको मायने दिए। प्रकृति को संस्कारित कर संस्कृति में बदलने का काम भाषा ने किया। भाषा से जो हमने सीखा, जिसे हमने पूर्वजों से ग्रहण किया और अपने वंशजों तक पहुंचाया, उसे ही शिक्षा का नाम दिया। भाषा ने शिक्षा को बनाया, शिक्षा ने भाषा को बनाया और दोनों ने मिलकर मनुष्य को बनाया, उसे पशुता से अलग किया, उसे सभ्यता और संस्कृति के कलश दिए।

मगर हम जो भाषा के साथ कर रहे हैं, वहीं शिक्षा के साथ कर रहे हैं। शिक्षा आज बस एक क़ारोबार है, इसलिए नहीं कि उसमें पैसे लगते हैं, बल्कि इसलिए कि वह सिर्फ़ पैसे कमाने या करिअर बनाने का ज़रिया रह गई है। शिक्षा में अब हम निवेश करते हैं ताकि वह भविष्य के लिए लौटे। शिक्षा अच्छी मनुष्यता की नहीं, अच्छी नौकरी की गारंटी देता है, तब हम उसमें निवेश करते हैं।

तो शिक्षा और भाषा का ऐसा अन्योन्याश्रित संबंध है। जब यह संबंध टूटता है तो शिक्षा भी बिखरती है, भाषा भी घायल होती है। दुर्भाग्य से आज हमारे देश में यही हो रहा है। शिक्षा के माध्यम के तौर पर भारतीय भाषाएं बेदखल की जा रही हैं और उनकी जगह अंग्रेज़ी आ रही है। निस्संदेह आज की दुनिया में अंग्रेज़ी एक लगातार अपरिहार्य हो रही भाषा है- इसलिए नहीं कि वह भाषिक या सांस्कृतिक तौर पर संपन्न है, बल्कि इसलिए भी कि वह ताक़तवर और समृद्ध देशों की भाषा है। अमरीका, ब्रिटेन और ऑस्ट्रेलिया जैसे बड़े देश इसी भाषा में बात करते हैं। दूसरी बात यह कि अंग्रेज़ी हमारे उस औपनिवेशिक अतीत की भाषा रही है जिसने आधुनिक भारत का मानस गढ़ा है। भारत की अपनी आधुनिकता जो अपने ढंग से आती, वह अंग्रेज़ी शिक्षा की दी हुई आधुनिकता से अलग होती। तब शायद उसमें कबीर और ग़ालिब का गाढ़ापन ज़्यादा मिला होता। बहरहाल, गुज़र चुके इतिहास को हम पलट नहीं सकते, इसलिए अंग्रेज़ी हमें एक औपनिवेशिक संस्कार की तरह मिली, इस मान्यता में बद्धमूल होकर मिली कि जो अंग्रेजी बोलते हैं, वे श्रेष्ठ होते हैं।

अंग्रेज़ी के इस वर्चस्व के पीछे मैकाले की वह शिक्षा थी जिसका मक़सद उसने भारतीय आत्मसम्मान की रीढ़ तोड़कर अंग्रेज़ों के दास बनाना बताया था। यह बात कुछ उदास करती है कि बीसियों भारतीय भाषाओं की समृद्ध परंपरा को, उसमें निहित ज्ञान को इस आधुनिकता दरअसल अंग्रेज़ी के ही मार्फ़त आ सकती है, भारतीय भाषाओं और हिंदी के मार्फ़त नहीं।

आज़ादी के बाद उम्मीद थी कि हिंदी और भारतीय भाषाएं अंग्रेज़ी के इस दबदबे से मुठभेड़ करेंगी और अपना स्वाभाविक अधिकार हासिल करेंगी। कुछ दशकों तक यह प्रक्रिया चली भी। अलग-अलग राज्यों में शिक्षा बोर्डों ने भारतीय भाषाओं के माध्यम से पढ़ाई का एक सिलसिला शुरू किया जिसके मार्फ़त एक समृद्ध और शिक्षित मध्यवर्गीय पट्टी उभरी जो अपने भाषित संस्कारों के प्रति सचेत थी। लेकिन रोटी और रोज़गारों के माध्यमों पर अंग्रेज़ी का कब्ज़ा मज़बूत होता रहा। अंग्रेज़ी पढ़ने और बोलने से अच्छी नौकरी मिलेगी, यह मान्यता इसलिए भी बनी कि व्यवहार में ऐसा होता

दिखाई पड़ा। दुर्भाग्य से 90 के बाद के दौर में खुली अर्थव्यवस्था ने सारी चीज़ों का ऐसा बाज़ारीकरण किया कि शिक्षा और भाषा का सवाल भी इस लहर के साथ बह गया। सरकारी स्कूली शिक्षा पीछे छूटती चली गई और निजी स्कूल अपनी अंग्रेजी दमक-दम के साथ हावी होते चले गए। शिक्षा में केंद्रीकरण अबाध गति से ज़ारी है और राज्यों के शिक्षा बोर्ड जैसे बीते ज़माने के अप्रासंगिक संस्थानों में बदल चुके हैं जो अब सिर्फ़ साधनहीन तबकों के काम आ रहे हैं। अब पढ़ाई का माध्यम अंग्रेज़ी है और इसमें वही बच्चे बेहतर कर पा रहे हैं जिनकी पृष्ठभूमि में अंग्रेज़ीदां अभिभावक हैं। यहां राम मनोहर लोहिया का कथन याद आता है जिनका कहना था कि अंग्रेज़ी शिक्षा की वज़ह से भारतीय बच्चों को पहले अंग्रेज़ी सीखनी पड़ती है और फिर अंग्रेज़ी में विज्ञान, समाजशास्त्र या गणित सीखना पड़ता है। यह प्रक्रिया उन्हें कई स्तरों पर वंचित करती है। पहले तो वे अपने समाज से कटकर क़िताबी ज्ञान के गुलाम हो जाते हैं और फिर धीरे-धीरे उनमें यह मानसिकता गहराती जाती है कि जो भी अंग्रेज़ी में आ रहा है, वही ज्ञान है, वही शिक्षा है, वही श्रेष्ठ है। इसका सबसे बड़ा नतीजा होता है कि ये बच्चे अपनी मौलिकता खो देते हैं और फिर कुछ दिए गए मानकों की बेहतरीन नकल में अपना जीवन होम करते जाते हैं। मैकाले बिल्कुल यही चाहता था।

इस दौर ने उच्च शिक्षा के साथ और भी तमाशा किया है। अंग्रेज़ी स्कूलों से निकलने वाले बच्चों के सामने अब एक ही सवाल है– करिअर का। इस करिअर की तलाश में वे विश्वविद्यालय के जाने-पहचाने शैक्षणिक माहौल में नहीं आ रहे हैं, बल्कि उन संस्थानों में जा रहे हैं जहां प्रोफेशन या वोकेशनल एजुकेशन के नाम पर, इंजीनियरिंग के नाम पर, कंप्यूटर या आईटी के नाम पर तरह-तरह का क़चरा-अधक़चरा ज्ञान मिल रहा है। अचानक ज्ञान और विमर्श के केंद्र कहलाने वाले विश्वविद्यालय बेमान हो गए हैं, अराजकता के अड्डे लगने लगे हैं।

यह एक वाजिब सवाल हो सकता है कि क्या जो कुछ अभी चल रहा है, उसमें अंग्रेज़ी को हटाकर हिंदी ला देने से सारी नौकरियां हिंदी में पैदा कर देने से हालात बदल जाएंगे। बच्चे कुछ ज़्यादा भारतीय और मौलिक हो जाएगें, ज़ाहिर है, ऐसा नहीं होगा। दरअसल, इसके लिए हमें भाषा और शिक्षा के अपने पूरे नज़रिये को बदलना होगा। याद रखना होगा कि हम ही भाषा को नहीं गढ़ते, भाषा भी हमें गढ़ती है। यही बात शिक्षा के साथ लागू होती है। जैसी शिक्षा हम आगे बढ़ाना चाहते हैं, वैसे ही मनुष्य हम होते जाते हैं।

तो पहली ज़रूरत यह है कि हम भाषा और शिक्षा को लेकर अपना नज़रिया बदलें। यह तय करें कि शिक्षा का मक़सद क्या है। अगर वह सिर्फ़ एक पेशेवर डिग्री हासिल कर अच्छे पैसे वाली नौकरी ले लेना है तब तो अंग्रेजी-हिंदी कुछ भी चलेगी। ऐसे में जो हिंदी होगी, वह भी अंग्रेज़ी जैसी होगी। फिर पूछा जा सकता है कि ऐसा ही होगा तो इसमें क्या हर्ज़ है? आखिर पढ़ाई का मक़सद बेहतर ज़िंदगी ही तो हासिल करना होता है जो अच्छी नौकरी से हासिल होती है। अगर पढ़ाई एक नौकरी या रोज़गार न दिला सके तो फिर उसका फायदा भी क्या है।

एक हद तक यह बात सही है। लेकिन अगर पढ़ाई का इकलौता मक़सद सिर्फ़ एक नौकरी रह जाए चाहे वह जितने पैसों की भी हो तो उससे भी बेहतर ज़िंदगी के इकहरेपन को समझा जा सकता है। अगर ध्यान से देखें तो आज बहुत सारे जो पेशेवर इंजीनियर, एग्जिक्यूटिव या मैनेजमेंट से जुड़े जो युवा आज बहुत अच्छी नौकरियां कर रहे हैं, क्या वे उतनी ही अच्छी ज़िंदगी भी जी पा रहे हैं? बेशक, उनके जीवन में साधनों के अभाव नहीं हैं– शानदार घर, गाड़ियां, बजट सब कुछ है, शॉपिंग के लिए नये-नये ब्रांड हैं। बड़े-बड़े मॉल हैं और इन सबमें बेहिचक ख़रीदारी करने लायक सामर्थ्य भी है। लेकिन इन सबके बावजूद हम यह पा रहे हैं कि इस ज़िंदगी की क़ीमत उन्हें कई स्तरों पर चुकानी पड़ रही है। उनका अकेलापन बढ़ा है और तनाव उससे भी ज़्यादा बढ़ा है। 40 साल के बाद तरह-तरह के रोग और अंदेशे उन्हें घेरे रहने लगे हैं। परिवार टूटे हैं, समाज छूटा है, सरोकार सिकुड़े हैं और अचानक जीवन बहुत इकहरा हो गया है जिसमें खुशियां साझा नहीं की जा सकतीं, बस पैसे से ख़रीदी जा सकती हैं।

दरअसल, जब मैं शिक्षा या भाषा की बात करता हूं और उसके आपसी रिश्ते का ख़याल रखता हूं तो मेरे जेहन में यह बात साफ़ होती है कि हमारा जीवन बहुत सारे सूक्ष्म तंतुओं से बना है, उस पर हमारे पुरखों की छाप हैं। शिक्षा का एक मक़सद इन तंतुओं को पहचानना भी है, जीवन की अलग-अलग तहों से हमें परिचित कराना भी है। अगर हम साहित्य, इतिहास या भूगोल या फिर राजनीतिशास्त्र पढ़ते हैं तो इसलिए नहीं कि इन विषयों के बारे में कोई जानकारी हासिल करना चाहते हैं, बल्कि इसलिए कि इनके मार्फ़त हम अपने जीवन को, अपनी दुनिया को, अपनी सभ्यता के सफ़र को कहीं बेहतर ढंग से समझते हैं। यह समझने में भाषा एक अहम कुंजी है क्योंकि उसमें हमारी आदिम स्मृतियां बोलती हैं। 'मां' या 'धर्म' या 'इतिहास' जैसे शब्द सिर्फ़ 'मदर', 'रिलीजन' या 'हिस्ट्री' का अर्थ देने वाले शब्द नहीं हैं। उनकी स्मृति उन्हें हमारे लिए एक विशिष्ट भावबोध में बदलती है। अंग्रेज़ी की शिक्षा में यह बोध ख़त्म हो जाता है और उसकी जगह एक अनूदित या यांत्रिक किस्म की जानकारी हमारे पास चली आती है।

आज शिक्षा हमारे लिए ऐसे ही यांत्रिक उपकरण में बदल गई है और लगातार बदली भी जा रही है। इससे मुठभेड़ का सबसे सही रास्ता यही है कि हम अपनी भाषिक जड़ों की ओर लौटें, इस बात को महसूस करें कि भाषा और शिक्षा के अंतर्संबंध कितने गहरे हैं और इसके मायने कितने व्यापक हैं। लेकिन यह बात सुनते हुए चाहे जितनी अच्छी लगे, लेकिन आज की तारीख़ बेहद चुनौतीभरी है– क्योंकि देश, समाज और सत्ता की सारी नियामक शक्तियां इसके विरुद्ध खड़ी हैं। वे आदमी नहीं अपनी मशीन का कलपुर्जा बनाना चाहती हैं क्योंकि इससे उनका क़ारोबार चलता है, उनकी दुनिया बनती है। इसलिए उन्होंने शिक्षा को सफलता से जोड़ रखा है और सफलता को अच्छी नौकरी से, अच्छी नौकरी को अच्छे पैसे का पर्याय बना डाला है और अच्छे पैसे को अच्छी जीवनशैली का। ऐसे में किसे अपनी भाषा याद आए और इसी में शिक्षा लेने-देने का ख़्याल आए। ❑

(लेखक एनडी टीवी इंडिया में वरिष्ठ समाचार संपादक हैं।

ई-मेल : priyadarshan.parag@gmail.com)

सरकारी शिक्षा से ही पूरा हो सकता है समान और सबको शिक्षा का सपना

● महेश पुनेठा

आज़ादी के पैंसठ साल गुज़र गए हैं अभी तक हम न समान, न समावेशी, न मूल्यपरक और न ही 'सबको' शिक्षा दे पाए हैं। ये लक्ष्य सार्वजनिक शिक्षा को मज़बूत करके ही प्राप्त करने संभव थे लेकिन लगातार शिक्षा का व्यवसायीकरण और निजीकरण बढ़ने से ये लक्ष्य शिक्षा संबंधी दस्तावेज़ों की शोभा मात्र बनकर रह गए हैं। सरकार की नीतियां प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से इस प्रवृत्ति को बढ़ावा दे रही हैं। एक ओर सबको शिक्षा की बात और दूसरी ओर शिक्षा के व्यवसायीकरण और निजीकरण को खुली छूट, यह कैसा अंतर्विरोध है?

आज शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य अच्छा इंसान बनना नहीं बल्कि अच्छा वेतन पाना मात्र रह गया है। ज्ञान और उत्पादक कार्य के बीच गहरी खाई बनी हुई है। शिक्षा पूंजी के हितग्राही हो गई है और एक ऐसे वर्ग को जन्म दे रही है जो विचार और कार्य में पूंजी का मददगार हो। बाज़ार ने शिक्षा को मुनाफ़े का माध्यम बना लिया है। शिक्षा जन सरोकारों की अपेक्षा धन सरोकारों से जुड़ गई है। स्कूल शिक्षा की दुकान और विद्यार्थी उपभोक्ता में बदल गए हैं जिसके पास जितने आर्थिक संसाधन हैं वह वैसी शिक्षा खरीद रहा है। विभिन्न उपभोक्ता वस्तुओं की तरह बाज़ार अलग-अलग गुणवत्ता वाली शिक्षा को लेकर उपस्थित हो रहा है। कम पैसे वालों के लिए एक तरह की शिक्षा है और अधिक पैसों वालों के लिए दूसरे तरह की। 'जिसकी आर्थिक हैसियत जैसी है वैसी शिक्षा खरीद ले', यह बाज़ार का अघोषित ऐलान है। ट्यूशन या कोचिंग नये धंधे के रूप में अस्तित्व में आए हैं। अख़बारों में बड़े-बड़े विज्ञापन देकर इनसे जुड़े संस्थान विद्यार्थियों और अभिभावकों को अपनी ओर आकर्षित कर रहे हैं। 'कुंजी' और 'गाइड' छापने वालों का धंधा खूब फल-फूल रहा है। सभी का ज़ोर एक ही बिंदु पर है कि कैसे परीक्षा में अधिकाधिक अंक प्राप्त किए जा सकते हैं? सभी यही तरकीब बताने में लगे हुए हैं। बच्चों को सांस लेने की फुरसत नहीं है। एक अंधी दौड़ में सभी दौड़ रहे हैं। जो सफल हो गए वे अपने आप को सिकंदर समझ रहे हैं और जो पीछे रह जा रहे हैं वे कुंठा, तनाव तथा अवसाद से ग्रस्त हो आत्महत्या कर रहे हैं या मानसिक संतुलन खो रहे हैं।

कॉर्पोरेट जगत की गिद्ध दृष्टि शिक्षा के व्यवसाय पर लगी हुई है। हो भी क्यों ना! इससे उसे दोहरा लाभ है- पहला, शिक्षा में बार-बार निवेश किए बिना दीर्घकाल तक धन की प्राप्ति। दूसरा, शिक्षा में नियंत्रण के द्वारा नयी पीढ़ी की मानसिकता को बाज़ार के अनुकूल कर अपने बाज़ार का निर्बाध रूप से विस्तार करना। शिक्षा में बाज़ार का ऐजेंडा संस्थानों के निजीकरण और व्यावसायीकरण से कहीं बड़ा है। भूमंडलीकरण का लोगों के ज्ञान को विकृत करने और औपनिवेशिक रूपाकारों के अनुकूल बनाने के रूप में इस्तेमाल किया गया है। विश्व बैंक जैसी आर्थिक संस्थाएं शिक्षा की नीतियां तय कर रही हैं। यह समझा जा सकता है जब एक आर्थिक संस्था शिक्षा की नीतियों का निर्धारण करने लगेंगी तो उसकी प्राथमिकता में कौन-सी बातें होंगी। आज शिक्षा में मूल्यों की बात केवल कहने भर के लिए रह गई है। मानवी मूल्य हाथी के दांत हो चुके हैं। सामाजिक न्याय जैसे शब्द सजावट के शब्द बन गए हैं। बाज़ार में बिक रही शिक्षा का मूल्यों से कुछ लेना देना नहीं है। यह विशुद्ध रूप से बाज़ार के अनुकूल शिक्षा है। इसका उद्देश्य अर्थ मानव तथा व्यवस्था की मशीन में फिट होने वाले पुर्जे तैयार करना है। शिक्षा की दुकानों में वही शिक्षा बेची जा रही है जिसकी कॉरपोरेट जगत को जरूरत है। बाज़ार को ऐसा मानव संसाधन चाहिए जो उसकी कंपनियों में लगी अत्याधुनिक तकनीक की मशीनों को सही ढंग से परिचालित कर सकें। उसके उत्पादों को खरीदने वाले उपभोक्ताओं को मानसिक रूप से तैयार कर सके। ऐसे उत्पादों को भी बेच सके जो उपभोक्ता की आवश्यक आवश्यकता न हो। बाज़ार सोचने-समझने वाला संवेदनशील मानव नहीं चाहता। ऐसा मानव उसके किसी काम का नहीं। इसलिए आज की शिक्षा एक कुशल डॉक्टर, इंजीनियर, प्रबंधक या प्रशासक तो तैयार कर रही है पर उसे एक संवेदनशील इंसान नहीं बना रही है। न ही यह शिक्षा सृजनशीलता को बढ़ाने में सफल हो पा रही

है। सृजनशीलता के अवसर इस बाज़ारवादी शिक्षा ने निगल लिए हैं। इस शिक्षा में ऐसी क्षमता नहीं है कि यह किसी को साहित्यकार, कलाकार, संगीतकार, वैज्ञानिक, दार्शनिक या चिंतक बना सके। यह उसकी न मंशा है और न ही जरूरत। यदि शिक्षा क्रम बाज़ार की जरूरतों से निर्धारित होगा तो वह बाज़ार की जरूरतों के अनुरूप क्षमताओं और कौशलों को विकसित करने वाला ही होगा। इसका परिणाम शिक्षा के व्यापक सामाजिक आधारों, शिक्षा में चिंतन की भूमिका और संवेदनात्मक पहलुओं से दूर ले जाएगा। शिक्षा में निहित मानवीय और समाजिक तत्वों जैसे कि समाजिक न्याय, समता और जेंडर जैसे मुद्दों, जिनकी शिक्षा में वैसे भी कम ही सराहना होती है, शिक्षा प्रक्रियाओं में पीछे चले जाएंगे। इंसान की बुनियादी आवश्यकताओं से जुड़े मुद्दों, शिक्षा, स्वास्थ्य, भोजन या मानवीय समता या स्वतंत्रता को किसी भी देश में निजीकरण की प्रक्रियाएं बराबरी की तरफ नहीं ले गई हैं।

शिक्षा आर्थिक उदारीकरण के ऐजेंडे को लागू करने का माध्यम बन चुकी है। उसके द्वारा आर्थिक उदारीकरण के पक्ष में माहौल तैयार करने का काम किया जा रहा है। ऐसा ही करना बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हित हैं। आज उच्च शिक्षा में विदेशी विश्वविद्यालय को आने की अनुमति दे दी गई है वह दिन दूर नहीं जब कोई बहुराष्ट्रीय कंपनी पूरे देश में शिक्षा देने का काम अपने हाथ में ले लेगी। तब देश की संप्रभुता और संस्कृति का क्या हाल होगा समझा जा सकता है।

दुर्भाग्यपूर्ण है कि हमारी 'लोककल्याणकारी, समाजवादी तथा लोकतांत्रिक सरकारें' इसी शिक्षा की पैरोकार हैं। आज़ादी के बाद से लेकर आज तक चल रही दोहरी शिक्षा जो आज बहुपरती शिक्षा में बदल गई है, इसी का परिणाम है। योजना आयोग में जनता के पैसों से विद्यालयों का आधारभूत ढांचा विकसित कर प्रबंधन के नाम पर उन्हें निजी हाथों को देने की योजना बन चुकी है। प्रथम चरण में देशभर में स्थापित होने वाले छह हज़ार मॉडल स्कूलों में से दो हज़ार पांच सौ स्कूलों को 'सार्वजनिक-निजी साझेदारी' के अंतर्गत किसी कॉरपोरेट, स्वयंसेवी संगठन, स्वयं सहायता समूह, व्यक्ति और समुदाय आधारित संगठनों को सौंपा जाएगा। भविष्य में इस भागीदारी का बढ़ना निश्चित है। कई राज्यों में तो यह प्रक्रिया प्रारंभ भी हो चुकी है।

शिक्षा अधिकार अधिनियम 2009 ने तो रही-सही कसर भी पूरी कर दी है। इस अधिनियम में ऐसे कुछ प्रावधान हैं जो शिक्षा के निजीकरण को खुला प्रोत्साहन देते हैं। निजी स्कूलों में 25 प्रतिशत ग़रीब-वंचित तबके के बच्चों को वाउचर प्रदान कर भेजने की योजना इसका एक उदाहरण है। इस प्रावधान से आने वाले समय में सरकारें नये विद्यालय खोलने के अपने दायित्व से बच जाएंगी। साथ ही इस मान्यता को भी अधिक बल मिलेगा कि निजी स्कूल सरकारी स्कूलों से बेहतर होते हैं। कैसी विडंबना है कि सरकार को अपने ही विद्यालयों पर विश्वास नहीं रह गया है। सरकार सरकारी स्कूलों की शैक्षिक गुणवत्ता को बढ़ाने की अपेक्षा जनता को निजी विद्यालयों की ओर जाने को प्रोत्साहित कर रही है। होना तो यह चाहिए था कि सरकार को अपने बीमार विद्यालयों का इलाज कर निजी विद्यालयों में अध्ययनरत बच्चों को उस ओर आकर्षित करती। उनकी गुणवत्ता को इस स्तर तक उठाए कि सम्पन्न वर्ग के बच्चे भी उन विद्यालयों में प्रवेश लेने को उत्सुक हों। भले ही सरकार उस वर्ग के बच्चों से शुल्क वसूल करे। ऐसा करने से दोहरा लाभ हो सकता था- पहला, हर वर्ग के बच्चे एक समान स्कूल में पढ़ते जो समाज में वर्ग भेद को समाप्त करता। दूसरा, सरकारी विद्यालयों को चलाने के लिए आर्थिक संसाधन जुटाए जा सकते। यह कोई जरूरी नहीं है कि अमीर या उच्च मध्यवर्ग के बच्चों को भी नि:शुल्क शिक्षा प्रदान की जाए। एक तरह से वाउचर योजना निजी क्षेत्र को लाभ पहुंचाने की योजना है। ऐसा प्रतीत होता है कि सरकार धीरे-धीरे शिक्षा को निजी क्षेत्र के भरोसे छोड़ कर अपनी जिम्मेदारी से बचना चाहती है। आज सरकारी विद्यालयों में ग़रीब वर्ग के बच्चे ही आ रहे हैं और जिस दिन ये बच्चे भी वाउचर लेकर निजी स्कूलों में चले जाएंगे तब फिर सरकारी स्कूलों को बंद करने के सिवाय कोई अन्य उपाय नहीं रहेगा। जैसा कि यह सिलसिला शुरू भी हो गया है। इस तरह एक दिन शिक्षा पूरी तरह निजी हाथों में चली जाएगी और देसी-विदेशी व्यापारी शुद्ध लाभ के लिए शिक्षण संस्थाएं संचालित करने लगेंगे। सोचा जा सकता है तब शिक्षा का उद्देश्य क्या रह जाएगा? शिक्षा में कितनी मूल्यों की बात रह जाएगी और कितनी जीवन की? तब शिक्षा का संबंध चेतना से नहीं रह जाएगा। शिक्षा जकड़न को तोड़े इसकी कोई जरूरत महसूस नहीं की जाएगी। बच्चों में विवेकशीलता का विकास का शिक्षा का कोई सरोकार नहीं रह जाएगा क्योंकि बाज़ार की दृष्टि से इनकी कोई उपयोगिता नहीं है। जैसा कि हम अभी भी देख रहे हैं निजी स्वामित्व वाले शिक्षण संस्थानों में शिक्षा के नाम पर पाठ्यचर्या में उन्हीं विषयों को शामिल किया जा रहा है जो उद्योगों के विस्तार और संचालन के लिए ज़रूरी हैं। वहां भाषा व मानविकी जैसे चेतना विकसित करने व समग्र व्यक्तित्व का निर्माण करने वाले विषयों की लगातार उपेक्षा की जा रही है। उनके स्थान पर प्रबंधन व तकनीकी विषयों को बढ़ावा दिया जा रहा है। बच्चा जो पढ़ना चाह रहा है उसे वह नहीं पढ़ने दिया जा रहा है बल्कि बाज़ार उसे जो पढ़ाना चाह रहा है उसे वह पढ़ता है। बच्चे की सृजनात्कमता और रुचि का कोई ध्यान नहीं रखा जा रहा है। बड़े-बड़े विज्ञापनों द्वारा छात्र-अभिभावकों का मन तैयार किया जा रहा है। उन्हें हसीन सपने दिखाए जा रहे हैं। इतने बड़े-बड़े दावे किए जा रहे हैं कि उन्हें लगता है कि अमुक पाठ्यक्रम पढ़ने से उनकी किस्मत ही बदल जाएगी।

कुछ लोग तर्क़ देते हैं कि निजी विद्यालयों में 25 प्रतिशत स्थान निर्धन और वंचित बच्चों के लिए आरक्षित हो जाने के प्रावधान से अमीर और गरीब वर्ग के बीच खाई पाटने में सहायता मिलेगी। अब रिक्शाचालकों, सफ़ाईकर्मियों, ठेले वालों, मज़दूरों आदि के बच्चे साहबों और सेठ-साहूकारों के बच्चों के साथ बैठकर पढ़ेंगे लेकिन पिछले तीन वर्ष के अनुभव बताते हैं कि ऐसा कुछ नहीं होने जा रहा है। ऐसा होने के स्थान पर बच्चों की एक केटेगरी (वाउचर वाले बच्चे) बनने की अधिक संभावना है। निजी विद्यालयों ने वाउचर वाले बच्चों के लिए एक तोड़ निकाल लिया है, उन्होंने ऐसे बच्चों की एक अलग कक्षा बना दी है। यहां ये बच्चे केवल हीनता ग्रंथि के शिकार होंगे उससे अधिक उनको कुछ मिलने वाला नहीं है। किसी को यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि सबको शिक्षा और बराबरी

का लक्ष्य निजी स्कूलों के भरोसे प्राप्त किया जा सकता है। बल्कि इनसे एक ख़तरा और बढ़ा है संविधान में उल्लिखित लोकतांत्रिक व धर्मनिरपेक्ष मूल्यों की निजी क्षेत्र की अनेक शिक्षण संस्थाओं ने खूब धज्जियां उड़ायी हैं। शिक्षा को कट्टरता, धर्मान्धता, जातिवाद, भाषाई दुराग्रह एवं क्षेत्रवाद फैलाने का माध्यम बनाया गया है। विशेष रूप से सांप्रदायिक मानसिकता को बोया और विकसित किया गया है। जैसा कि प्रख्यात शिक्षाविद् अनिल सदगोपाल का मानना भी है, 'शिक्षा के जरिये वर्ग-भेद, जाति-भेद, धार्मिक कट्टता, नस्लवाद, पितृसत्ता, सामंती व गैर-तार्क़िक सोच, पिछडेपन आदि विकृतियों के ख़िलाफ़ लड़ाई आगे बढ़ाने के सरोकार गौण हो रहे हैं। शिक्षा, वैश्विक बाज़ार की ताक़तों के हाथ में वर्चस्ववाद, शोषण, सांप्रदायिकता व विषमता फैलाने का हथियार बनती जा रही है।'

एक ओर शिक्षा का निजीकरण और व्यावसायीकरण अपना ऐसा रंग दिखा रहा है दूसरी ओर अभी भी सरकार सबको शिक्षा देने के नाम पर संसाधनों के अभाव का रोना रोती रहती है और वही तर्क़ देती है जो 1835 में औपनिवेशिक सरकार देती थी। सरकारी स्कूल व्यवस्था को वैश्विक पूंजी के दबाव में ध्वस्त करने का उपक्रम किया जा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में चलाई जा रही तमाम परियोजनाएं इसी का हिस्सा हैं जिनको 1990 के जोमतियन सम्मेलन से गति प्राप्त हुई है। इससे पूर्व भारत की शिक्षानीतियों में किसी न किसी रूप में यह कोशिश होती थी कि वह देश के संविधान के अनुरूप काम करे। संविधान में शिक्षा और सामाजिक विकास के जो मूल उद्देश्य हैं उनको पूरा करे। लेकिन उत्तर-जोमितियन सम्मेलन के बाद संविधान के आधार की जगह वैश्वीकरण की बाज़ार-आधारित नीतियों ने ले ली तथा भारत सरकार का स्थान अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्वबैंक ने। एक परिवर्तन और हुआ इससे पहले शिक्षा नीतियों या कार्यक्रम की रूपरेखा में संसद से पूछे बगैर कोई भी परिवर्तन नहीं किया जाता था लेकिन इसके बाद उसे पूछे बिना और बिना चर्चा के अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन होने लगे। यह इसलिए हुआ कि हम पहले से ख़र्च किए जा रहे 100 पैसे में 4 पैसे और जोड़ने में समर्थ नहीं हो पाए। एक नयी प्रवृत्ति और उभरी अब अंतर्राष्ट्रीय वित्त एजेंसियां सीधे राज्य सरकारों के साथ समझौते करने लगी हैं जैसे केंद्र का कोई महत्व ही न हो। विश्व बैंक की यह प्रक्रिया राज्य की भूमिका को समाप्त करने की उसकी स्थापित नीति के अनुरूप है-राज्य की भूमिका को कमज़ोर करके ही सीधे बाज़ार पर कब्जा किया जा सकता है। उक्त सम्मेलन में तीसरी दुनिया के अनेक देशों के साथ-साथ भारत ने भी दस्तावेज़ों पर हस्ताक्षर किए जिनमें बच्चों को शिक्षा देने के लिए 'सबके लिए शिक्षा' कार्यक्रम के तहत अंतर्राष्ट्रीय मदद लेने की स्वीकारोक्ति की गई थी। बतौर नीति यह पहली बार हुआ। यह सब शिक्षा के निजीकरण के उद्देश्य से किया गया। इस प्रकार राज्य एक तरफ अपने संवैधानिक दायित्वों से मुंह मोड़ता जा रहा है और साथ ही साथ एक छोटे उर्ध्वगामी वर्ग के लाभ के लिए स्कूली शिक्षा के निजीकरण और व्यावसायीकरण को भी प्रश्रय दे रहा है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि न तो परियोजनाओं से और न ही सार्वजनिक-निजी भागीदारी मॉडल से शिक्षा का भला हो सकता है इसके लिए तो एक स्थायी और मज़बूत सार्वजनिक ढांचा खड़ा करने की जरूरत है। अन्यथा सबको शिक्षा और समान शिक्षा केवल स्वप्न मात्र बनकर रह जाएंगे। कितने अफ़सोस की बात है कि समान शिक्षा के लिए आज़ादी से अब तक संसद से लेकर शिक्षा संबंधी विभिन्न दस्तावेज़ों में अनेकानेक बार संकल्प व्यक्त किया जा चुका है लेकिन धरातल में कहीं समान शिक्षा नहीं दिखाई देती है। वर्ष 1966 में कोठारी शिक्षा आयोग ने पड़ोसी स्कूल की अवधारणा पर आधारित समान स्कूल प्रणाली की अनुशंसा करते हुए कहा था कि इसके बगैर एक समतामूलक व समरस समाज का निर्माण नहीं हो सकता है। यदि ऐसा न हो सका तो विषमता और आपसी दूरियां बढ़ती जाएंगी। इस रिपोर्ट में कहा गया कि- स्कूलों और कॉलेजों के प्रतिमानों में भेद शैक्षिक असमानता के अत्यंत दु:साध्य रूप उत्पन्न करते हैं। उसका मानना था कि निजी उद्यम के कुछ रूपों ने शिक्षा पर सकारात्मक के बजाय नकारात्मक योगदान किया है। आयोग की स्पष्ट मान्यता थी कि आधुनिक समाज के लिए बढ़ती शिक्षा की ज़रूरतों को केवल राज्य ही पूरा कर सकता है और निजी उद्यम पर अतिरिक्त निर्भरता दिखाना बहुत बड़ी गड़बड़ी होगी। 1986 की शिक्षा नीति में कहा गया कि कोठारी शिक्षा आयोग द्वारा अनुशंसित पड़ोसी स्कूल की अवधारणा पर आधारित समान स्कूल प्रणाली की ओर बढ़ने के लिए कारगर क़दम उठाए जाएंगे। पर इसी अधिनियम में अनौपचारिक स्कूलों की व्यवस्था कर इस अवधारणा की धज्जी उड़ाई गई। इसी तरह शिक्षा अधिनियम 2009 में 'साम्यपूर्ण शिक्षा' शब्द को बड़ी कोशिशों के बाद स्वीकार तो किया गया लेकिन इस दिशा में कोई कारगर क़दम उठाने के बजाय अधिनियम में ही चार तरह के विद्यालयों को स्वीकृति प्रदान की गई- पहला, सरकारी विद्यालय दूसरा, सरकार से सहायता प्राप्त निजी विद्यालय तीसरा, गैर-सहायता प्राप्त निजी स्कूल एवं चौथा विशेष श्रेणी के सरकारी विद्यालय जैसे-केंद्रीय विद्यालय, नवोदय विद्यालय, सैनिक स्कूल। इनके स्तर में काफी भिन्नता है। इनमें भी प्रत्येक स्तर के विद्यालयों में भी आंतरिक स्तर पर भी अंतर दिखाई देता है- नवोदय विद्यालय केंद्रीय विद्यालयों का मुक़ाबला नहीं कर पाते हैं, राज्यों द्वारा संचालित ग्रामीण विद्यालय गुणवत्ता में शहरी स्कूलों से काफी नीचे हैं। साथ ही शिक्षा गारंटी केंद्रों जैसी व्यवस्था भी है जो गुणवत्ता में अन्य सरकारी स्कूलों से काफी नीचे हैं। यही हाल निजी स्कूलों का भी है। पब्लिक स्कूलों की भी अनेक परतें हैं। एक ओर इंग्लैंड या अमरीका के पब्लिक स्कूलों से होड़ लेते स्कूलें हैं तो दूसरी ओर शिक्षा की दरिद्र दुकानें जिनके पास बच्चों के बैठने तक के लिए भी उचित हवादार कमरे भी नहीं हैं जहां हाईस्कूल-इंटर पास अध्यापक बिना प्रशिक्षण के शिक्षण कार्य कर रहे हैं। शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी इस असमानता को और अधिक बढ़ा रहा है। इससे एक और स्तर बन रहा है। साथ ही सूचना विस्फोट और कंप्यूटर-तकनीक ने भी शैक्षिक क्षेत्र के दो फाड़ कर दिए हैं। या यों कह सकते हैं कि एक ओर तो कंप्यूटर से काम ले सकने वाले यानी कंप्यूटर साक्षर लोग हैं जो ज्ञान और सूचना की वैश्विक संचरण-प्रक्रिया से जुड़े हैं, दूसरी ओर इस संचरण से असंबद्ध अथवा इस

(शेषांश पृष्ठ 52 पर)

हमें इसलिए चाहिए खाद्य सुरक्षा

● योगिंदर के अलघ

खाद्य सुरक्षा पर *योजना* ने मुझे आलेख लिखने को कहा। मेरे हिसाब से इसके पीछे की सोच यह रही होगी कि मैं जनसंख्या के बड़े हिस्से के परिप्रेक्ष्य में इस पर विस्तार से नीतियों की व्याख्या करूं, क्योंकि ऐसा न करने से ग़रीबों के छूट जाने की आशंका बनी रहेगी। यह भी कि राज्यों द्वारा ग़रीब की पहचान कैसे हो क्योंकि रंगराजन समिति ने ग़रीबी रेखा और ग़रीबों को शामिल करने पर नये मानक दिए हैं। लेकिन इन सबकी बार-बार चर्चा करते हुए किसी का भी बोर हो जाना स्वाभाविक है। लगभग एक दशक पहले जब मैं फेलो था, कहा था कि गुजरात और अन्य कुछ राज्यों ने संकेतक आधारित ग़रीबी का सर्वेक्षण किया और खाद्य सुरक्षा लागू करने के पूर्व योजना आयोग द्वारा ऐसे ही सर्वेक्षण की आवश्यकता है। इसके अलावा सभी तरह के शामिलीकरण में पूर्वानुभव पर आधारित एक ही मानदंड का दोहरीकरण भी होना चाहिए। हालांकि खाद्य सुरक्षा विधेयक अपने समय पर पास होगा और प्रतियों में उपलब्ध होगा, इसमें अच्छी बात यह है कि खाद्य सुरक्षा के आधार पर गांवों में कृषि और ग्रामीण विकास का दीर्घ विकास दृष्टिगोचर होगा। कई साल पूर्व मैंने योजना में इस मॉडल को जोड़ा था कि पुनर्वितरण प्रणाली को विकास के साथ जोड़ा जाए। मैं गुलाटी का प्रशंसक नहीं हूं, जिन्होंने कहा था कि रोज़गार और खाद्य सुरक्षा योजनाओं की ज़रूरत इसलिए नहीं है क्योंकि सौ फीसदी देसी घी की तरह कृषि विकास ही इन समस्याओं के समाधान में सक्षम है। मुझे पता है कि उच्च विकास वाले क्षेत्रों में भी अभी ग़रीबी बरक़रार है और विकास की घटती ग़रीबी के बीच के अंतर्संबंध (यहां गुलाटी सही हैं) महिलाओं, पुरुषों और बच्चों की मदद नहीं करते। लेकिन फिर से गांवों का रुख करना पड़ेगा ताकि यह पता चले कि वास्तव में क्या हुआ, क्या हो सकता है और इसके प्रतिफल क्या हो सकते हैं।

देश के पूर्वी हिस्से में कृषि की एक विलक्षण तस्वीर यह है कि ग़रीब किसान मानसून के महीनों में धान की खेती करते हैं और कई बार उनकी खेती बाढ़ की भेंट चढ़ जाती है। वे फिर जाड़े की वर्षा पर दांव लगाते हैं और कई बार सूखे की वज़ह से उनकी खेती चौपट हो जाती है। खेती की उपज उर्वर ज़मीनों में ज़्यादा होती है, लेकिन इसका आंकड़ा बढ़ नहीं रहा। पूर्वी हिस्सों में दूसरी हरित क्रांति के कुछ अच्छे परिणाम दिखाई देते हैं। हम तेल की मशीनों की बजाय आवर्ती फुहारों वाली सिंचाई व्यवस्था से अच्छा लाभ उठा सकते हैं, भले ही उनका उपयोग हर जगह नहीं किया जा सकता। पिछली बार मैं पश्चिम बंग के मिदनापुर गया था। यह हुगली या 24 परगना जैसा उर्वर नहीं हैं। जैसे ही आप हावड़ा से बाहर निकलते हैं, आश्चर्यजनक रूप से फैक्ट्रियां ही फैक्ट्रियां दिखती हैं लेकिन अब डेयरी और नर्सरी भी दिखने लगी हैं। कुछ घंटों की ड्राइव के बाद हम एक जगह खाने के लिए रुके। हमने चावल, फिश करी और चना दाल के साथ संदेश और मिस्टी दोही खाई। मिदनापुर जहां मैं रुका था, वहां लाल लैटराइट मिट्टी है, जो पानी जज्ब कर नहीं रख पाती और पानी रिसकर नदियों में बह जाता है, जो किसी कृषक के लिए दुःस्वप्न ही है।

यह बोरकोला ग्राम पंचायत का कसपाल गांव था। वहां चारों ओर शहरी वातावरण जैसा था (जैसा कि मैंने सन् 2007 में बड़े से गांव की तलाश की थी) और कोलकाता जैसा शहर अब अकेला नहीं है। यह इस मायने में भाग्यशाली है कि यह कसई नदी के किनारे बसा है। अगर बरसात नहीं होती है तो लोग नदी का पानी बाल्टियों से निकालकर उपयोग कर लेते हैं। इतना ही नहीं, आश्चर्यजनक तो यह है कि यहां सभी के पास ट्यूबवेल की सुविधा है। पहली जगह जहां मैं थोड़ी देर के लिए गया, मैंने देखा कि वहां एक सार्वजनिक क्षेत्र का बैंक जल विकास के लिए बड़े पैमाने पर क्रेडिट की सुविधाएं मुहैया कराता है। यह बैंक स्टेट बैंक ऑफ इंडिया है। हालांकि मेरी बात स्थानीय बैंकर से नहीं हो पाई, इसलिए मैं यह जान नहीं पाया कि वहां ऑपरेशन बर्गा की वजह से लोगों के पास भूमि मालिकाना अधिकार की वजह से क्रेडिट दिए जाते हैं या फिर यह बैंक की कोई प्रभावशाली योजना है। मैंने वहां हरिप्रसाद समंथा, चित्तो मैती और झाथ लेंका से बात की। इनमें से किसी के पास दो एकड़ से ज्यादा की ज़मीन नहीं थी। यह घनीभूत कृषि इलाक़ा है और बिचौलिये किसानों के पास भू-स्वामित्व जैसी कोई बात नहीं है, जैसा कि गुजरात और उत्तर पश्चिमी इलाक़ों में देखा जाता है। संपन्न किसान और अधिक ज़मीनें लीज़ पर नहीं देते। वे इस पर वैविध्यपूर्ण कृषि करते हैं। तक़नीक अच्छी है। अधिकांश बीज विश्वविद्यालय से आते हैं, हालांकि धान की किस्मों में ज़्यादा बदलाव नहीं किया जाता। वे ज़्यादा कमाई सब्जियां उगाकर करते हैं। यहां आलू की पैदावार जबर्दस्त होती है। इनके बीच व्यापारिक कंपनियों से ख़रीदे जाते हैं, जो महंगे होने और बाज़ार की मंदी के बावजूद ज़्यादा मुनाफ़ा देते हैं। अनचीन्हे और अनियंत्रित उत्पादकों द्वारा बेटी बीजों का उत्पादन सामान्य बात है, इसके बावजूद कुछ

ख्यात ब्रांड की किस्मों का भी उपयोग किया जाता है। इस दिशा में एक बड़ा काम यह हुआ है कि डेयरी का व्यवसाय भी खूब हो रहा है। लगभग सभी किसानों के पास तीन से पांच गाएं हैं ही। इनकी देखभाल औरतें करती हैं और यह प्रचलन तेज़ी से बढ़ रहा है।

यहां कुछ परेशानियां भी हैं और उनकी वज़ह डब्ल्यूटीओ नहीं है। उन्हें नहीं पता कि क्या करें। यह एक तरह से विकास का खेल है। आप जहां हैं, वहां बने रहने की मशक्क़त है। उन्हें नहीं पता कि आगे की क्या राह है। लेकिन वे संगठित हैं और जब हमने कई संभावनाओं पर बातें की, तो सवाल पूछने की बारी उनकी थी। उन्हें इस बात की जानकारी है कि उत्तर और पूर्व में क्या चल रहा है। वे जानते हैं कि दालों के सबसे अच्छे बीज महाराष्ट्र और मध्य प्रदेश से आते हैं और रेंडी के लिए गुजरात सर्वश्रेष्ठ है। गुजरात का सरसों अच्छा होता है और अब एनडीडीबी ने इसका प्रसार भी काफी किया है। भूमिहीनों का भी मानना है कि भूख कम हुई है और उनकी बेटियां स्कूल जाती हैं, लेकिन यहां फिर से गुलाटी साहब की बात मौजूं है।

भूमि की ढलान नदी से ऊपर है। ढलान दो से तीन सौ मीटर की है और जहां तक मैंने जांची यह दूसरे गांवों में भी है। यहां बहुत कुछ नहीं हुआ है। लगभग आधी आबादी ग़रीब है। यहां एक ही फ़सल की पैदावार होती है और दूसरी फ़सल पूरी तरह वर्षा पर निर्भर है। पैदावार भी कम होती है। इन सवालों के कई जवाब हो सकते हैं, लेकिन चूंकि योजना और निवेश शुरू ही नहीं हुए हैं, इसलिए इनकी बात करना भी एक किस्म का मजाक ही होगा। हम इन गांवों में बाज़ार और समृद्धि पैदा करने का कोई समन्वित उपाय ही नहीं कर रहे हैं। सदियों से ज़्यादातर फ़ोकस जनजातीय और अनुसूचित जाति की आबादी की तरफ होता आया है।

हां वे यह कह सकते हैं कि जब तक विकास की सदी आएगी, तब तक हमें यह लोक खाद्य सुरक्षा पैकेट की ज़रूरत है और मैं भी इसके पक्ष में हूं। लेकिन वो बूढ़ा आदमी, जिसने हमें आज़ादी के लिए लड़ना सिखाया और जिसके चेले ने यह सपना देखा कि जब विश्व सो रहा होगा, भारत स्वाधीनता के लिए जाग रहा होगा, उसने हमारे सिर को तारों तक तो पहुंचा दिया, लेकिन हमारे पैर अब भी ज़मीन पर ही हैं।

अब मैं अपने गुजरात की तरफ आता हूं। जब मैंने इरमा के अध्यक्ष की जिम्मेदारी संभाली थी, तब मेरे सामने हीरो कुरियन का व्यक्तित्व नहीं था, बल्कि मैं एक संस्था से जुड़ा था। यहां सभी के लिए एक निश्चित अवधि होती है, लेकिन अध्यक्ष की अवधि सबसे पहले निर्धारित होती है। तीन साल के दो कार्यकाल और उसके बाद मुझे रेशम विभाग में जाना पड़ा। लेकिन जब मैं वहां जाता हूं और आणंद, पेटलाद और वातामन चौकी के क्षेत्रों की ओर घूमता हूं तो मैं पाता हूं कि ये क्षेत्र काफी मोहक हैं, यहां की मिट्टी अच्छी है, जब तक आप बहल तक नहीं जाते। मुझे इरमा के लिए बहुत ज़मीन नहीं मिली थी, जहां मेरा विचार था मैं वो सब कुछ कर पाऊंगा, जिसका सपना मेरे पूर्ववर्तियों ने देखा था। एक बार मैं अपने मित्र प्रोफेसर महेश पाठक, जो कृषि आर्थिकी के विशेषज्ञ थे, के साथ बहल के खानपुर क्षेत्र तक गया, जो तारापुर से कुछ ही किमी. की दूरी पर है। यह एक गहराई का क्षेत्र है, जहां सौराष्ट्र और उत्तरी गुजरात की ओर से आने वाला पानी जमा होता है और फिर बह भी जाता है। रबी के रूप में यहां ख्यात दुरहम भलिया गेहूं और दाउदखानी की पैदावार होती है। चूंकि जल निकासी हमेशा से यहां एक समस्या रही है, सिंचाई सही ढंग से नहीं होती और दुरहम लुधियाना गेहूं की तुलना में यहा की पैदावार कम हो जाती है। यह इलाक़ा पांच हज़ार साल पहले जिस तरह विकसित था, उसकी तुलना में ज़्यादा विकसित नहीं है। दूसरी तरफ खानपुर ज़्यादा विकसित हुआ है। यहां के किसान भलिया गेंहू की बजाय एमपी टुकड़ी की पैदावार करते हैं, जो ज़्यादा होती है। यहां सिंचाई की व्यवस्था भी अजीब है। सरदार सरोवर परियोजना से पीने का पानी आता है, जो खानपुर के तालाब को भर देता है। आधिकारिक रूप से पीने के पानी की जितनी ज़रूरत है, उससे ज़्यादा पानी खानपुर के तालाब में रह जाता है जो फ़सल की सिंचाई के काम आ जाता है। मुझे इस बात पर हमेशा हैरानी होती है कि किस तरह हमारे परियोजना के योजनाकार सोचते हैं और किस तरह ग़रीब किसान अपनी खेती के लिए पानी का प्रबंध कर लेते हैं। ठीक इसी तरह, जब आईपीसीएल ने वड़ोदरा से समुद्र तक एक निस्तारण नहर बनाई, तब प्रदूषित पानी का उपयोग सिंचाई के लिए किया जाता था। मैं एक किसान महेशभाई से मिला और पूछा, आप क्यों नहीं भलिया गेहूं उपजाते हैं, जिसकी अच्छी क़ीमत मिलती है। उन्होंने कहा अगर किसान भलिया गेंहू बोएंगे, तो तालाब में इकट्ठा पानी में घेरू नामक घोल बन जाता है, जो पैदावार को कम कर देता है। हो यह रहा है कि सिंचाई ने फ़सलीय तरीक़ों में बदलाव ला दिया है और गुणवत्ता युक्त उत्पाद के बदले एक मानक उत्पाद ही पैदा हो पा रहा है, जिसे हम विकास का नाम दे रहे हैं। मेरी चिंता इस बात को लेकर है कि इस इलाक़े में जल निकासी की व्यवस्था ख़राब है और इलाक़े में नमक की मात्रा काफी अधिक है। जब सतह पर नमक की मात्रा बढ़ती है तो वह इलाक़े की खेती के लिए अभिशाप बन जाता है। लेकिन मैं अपने भलिया मित्रों के लिए प्रार्थना करूंगा। यहां से चुवहल क्षेत्र (चालीस गांवों का इलाक़ा, जहां मैं एसएसपी नहर निर्माण के सिलसिले में जा चुका हूं।) भी ज़्यादा दूर नहीं है। यहां नर्मदा का पानी आता है, लेकिन दिल्ली और गांधीनगर के योजनाकारों ने यहां उद्योग लगाने का निर्णय किया, जिसके विरोध में सड़कों पर हज़ारों ट्रैक्टर विरोध में उतर आए। इनमें औरतों की अच्छी-खासी संख्या थी। उनके साथ शांतिपूर्ण विरोध मार्च में मैं भी शामिल था। यह केंद्रीय सत्ता की योजना का एक तीखा अनुभव-सा था।

मेरी अंतिम कथा एक जनजातीय क्षेत्र से जुड़ी है। पंचमहल के एक बाबू ए. तिवारी ने मुझे सनशाइन प्रोजेक्ट दिखाया। यहां मकई आदिवासियों का मुख्य आहार है। वे प्रति हेक्टेयर डेढ़ क्विंटल मकई उपजाते हैं, फिर भी भूखे रहते हैं। तिवारी ने हमें बायोटेक मकई के बीज दिखाए। वे मॉनसैंटो से मंगाए गए थे, जो प्रतिहेक्टेयर सोलह क्विंटल से अधिक की पैदावार देते हैं, लेकिन एक फील्ड सर्वे में भूमि और जल से जुड़े सर्वश्रेष्ठ एनजीओ सदगुरु ने पाया कि हमारे विश्वविद्यालयों में यह आंकड़ा और भी बेहतरीन है। तिवारी का स्थानांतरण हो गया और एक एनजीओ ने सब कुछ रोक दिया। सद्गुरु और एक

(शेषांश पृष्ठ 52 पर)

शिक्षित भारत का स्वप्न और सामाजिक असमानताएं

● ऋतु सारस्वत

यह एक सर्वविदित सत्य है कि शिक्षा किसी भी व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के विकास की धुरी होती है। शिक्षा का संबंध सिर्फ़ साक्षरता से ही नहीं है बल्कि शिक्षा चेतना और उत्तरदायित्व की भावना को जाग्रत करने वाला औज़ार भी है। शिक्षा को एक मापक या पैमाने के तौर पर देखा जाता है जिसके आधार पर व्यक्ति, राज्य या देश का मूल्यांकन किया जाता है और यदि इस मूल्यांकन के दृष्टिकोण से हम 'भारत' में साक्षरता की स्थिति को देखें तो वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार देश में साक्षरता दर 74.04 प्रतिशत है। पुरुषों की साक्षरता दर 82.14 प्रतिशत है एवं महिलाओं की 65.46 प्रतिशत। पर इन आंकड़ों से परे, शिक्षित भारत के अधूरे स्वप्न की वह कड़ियां भी हैं जिनके संबंध में गहन विचार-विमर्श की आवश्यकता है। अंतर्राष्ट्रीय समुदाय ने 2000 में तय किया था कि शिक्षा 'मानवाधिकार' है, हर व्यक्ति को जीवन में विकास के समान अवसर मिलने चाहिए। उनके साथ सामाजिक पृष्ठभूमि, लिंग, धर्म या उम्र के आधार पर भेदभाव नहीं होना चाहिए। पर क्या वाकई ऐसा होता है? इस प्रश्न का उत्तर जानना नितांत आवश्यक है और यह भी जानना महत्वपूर्ण है कि क्यों हर व्यक्ति के लिए शिक्षा ज़रूरी है? यूनेस्को की एक रिपोर्ट के मुताबिक, 'विश्व के विकास की कार्यसूची में सभी विषयों जैसे– निर्धनता उन्मूलन, स्वास्थ्य संरक्षण, तक़नीकी जानकारी का आदान-प्रदान, पर्यावरण का रक्षण, लिंग-भेद समापन, प्रजातांत्रिक प्रणाली को सुदृढ़ करना तथा शासन-प्रशासन में सुधार, सबके लिए न्याय सुलभता, शिक्षा के माध्यम से इन विषयों को एकात्मक भाव से देखा जाना चाहिए।' स्पष्ट है कि शिक्षित व्यक्ति ही स्वयं को और देश को एक सकारात्मक दिशा दे सकता है।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 भारतीय संविधान के 86वें संशोधन के तहत सामने आया और 1 अप्रैल, 2010 से लागू हुआ। देश में शिक्षा का स्तर ऊपर उठाने के लिए सरकार ने कई क़दम उठाए हैं। 6 से 14 साल के बच्चों के नि:शुल्क शिक्षा का कानून इसी दिशा में एक महत्वपूर्ण क़दम है, लेकिन लक्ष्य अभी भी दूर है। यूनेस्को द्वारा जारी की गई विश्वभर में प्राथमिक शिक्षा की दशा-दिशा का जायजा लेने वाली सालाना रिपोर्ट में भारत में बुनियादी शिक्षा के कार्यक्रमों और अभियानों के नतीज़ों को सकारात्मक बताते हुए कहा गया है कि भारत ने बच्चों को स्कूल भेजने के मानक पर दुनिया में सबसे तेज़ प्रगति की है। बावजूद इसके भारत उन 28 देशों में से एक है जो वर्तमान रफ़्तार के आधार पर 2015 तक सबके लिए शिक्षा के अंतर्राष्ट्रीय लक्ष्य को पूरा करने में सफल नहीं होंगे। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि विश्व के कुल अशिक्षितों में से 34 प्रतिशत केवल भारत में हैं और इससे भी पीड़ादायक तथ्य यह है कि बालिकाओं को शिक्षित करने के संदर्भ में अब भी हम कोसों दूर हैं। गैर-सरकारी संगठन 'चिल्ड्रेन राइट्स एंड यू' (क्राई) ने एक अध्ययन के आधार पर उन कठिनाइयों का जिक्र किया है जिनका सामना बेटियां आज भी स्कूल जाने में करती हैं और जिसकी वज़ह से वे हाईस्कूल पहुंचते-पहुंचते पढ़ाई छोड़ देती हैं। लड़कों की तुलना में लड़कियों का जल्द विवाह, घर से स्कूल की दूरी व उचित परिवहन का अभाव, घरेलू कामकाज में हाथ बंटाना, अलग शौचालय का अभाव, शिक्षिकाओं का अभाव उनकी पढ़ाई को जारी रखने में बाधक बनते हैं। क्राई ने पांच शहरों– दिल्ली, मुंबई, बंगलुरु, चेन्नई और कोलकाता में सर्वेक्षण के आधार पर बताया है कि शिक्षा के अधिकार कानून के तहत आने वाले स्कूलों में लड़कियों के लिए अलग शौचालय न होना एक बड़ी चिंता का विषय है। यह गौरतलब है कि उच्चतम न्यायालय ने इसे गंभीर समस्या मानते हुए कहा था कि स्कूल में बुनियादी सुविधाएं मुहैया नहीं कराना अनिवार्य शिक्षा के मौलिक अधिकार का उल्लंघन है। उच्चतम न्यायालय के हस्तक्षेप के बाद भी ऐसे स्कूलों की कमी नहीं जहां बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध हों। यूं तो बालिका शिक्षा के लिए 'महिला अध्ययन' विभाग नीति, योजना, पाठ्यचर्चा के कार्यान्वयन और अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में अनेक अंत:क्षेपी उपायों के ज़रिये प्रतिबद्ध हैं। इसकी भूमिका संवैधानिक प्रावधानों राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986, कार्रवाई कार्यक्रम 1992, सीईडीएडब्ल्यू और बाल अधिकार (1990) की रूपरेखा के भीतर बालिकाओं की शिक्षा और विकास को प्रोत्साहन देना है। इन प्रयासों के पश्चात् भी यदि बालिकाएं शिक्षा के अधिकार से वंचित हैं तो उसके पीछे जहां बुनियादी सुविधाओं का अभाव है वहीं भारतीय पितृ सत्तात्मक समाज में गहराई से पैठ जमाई लैंगिक विषमता भी है, जो आज भी बालिकाओं की परिधि घर की चारदीवारी मानती हैं। इस धारणा को तोड़ने के लिए हमें अथक प्रयास करने होंगे। सामाजिक विषमता का शिकार सिर्फ़ लड़कियां ही नहीं स्वतंत्र भारत के छह दशक बीत जाने के बावजूद जातिगत विभेद के चलते सैंकड़ों की संख्या में बच्चे शिक्षा बीच में ही छोड़ देते हैं। शिक्षा के अधिकार के तहत दाखिला पाए छात्र-छात्राओं के साथ भेदभाव की बढ़ती शिकायतों के बीच सरकार ने स्कूलों के लिए नये दिशानिर्देश जारी किए हैं। स्कूलों से कहा गया है कि वे कक्षाओं में बच्चों की जाति या समुदाय की घोषणा न करें साथ ही ऐसे बच्चों पर आरक्षित वर्ग का ठप्पा न लगाएं। संभवतया सरकार के इन निर्देशों का पालन स्कूल करे भी पर सुदूर ग्रामीण इलाक़ों के स्कूलों की

स्थिति में शीघ्र ही कोई बदलाव आएगा, ऐसा लगता नहीं।

एक अर्से पहले यूनिसेफ के सहयोग से दलित आर्थिक आंदोलन और नेशनल कैंपेन ऑन दलित ह्यूमन राइट्स ने मिलकर एक अध्ययन किया था और इस अध्ययन की रिपोर्ट में यह साफ़ तौर पर इंगित था कि स्कूली बच्चों के साथ भेदभाव के चलते बड़ी संख्या में दलित बच्चे अपनी आगे की पढ़ाई को बरक़रार नहीं रख पाते। सुदूर राजस्थान के गांव में कक्षा में दलित बच्चों के आते ही उच्च जाति के बच्चे मुंह पर कपड़ा बांध कर उनके अभिभावकों (सफाई कर्मचारी) के पेशे का नाटकीय रूपांतरण कर माखौल उड़ाते हैं। पिछले छह दशकों में भारत में दलित समाज को लेकर जहां एक ओर कई लोकतांत्रिक प्रतिबद्धताएं उनकी स्थिति मज़बूत करती हैं और सुधरती नज़र आती हैं वहीं दूसरी ओर ज्ञान के केंद्रों में ऊंच-नीच का भेदभाव, मानवता का परिहास करता नज़र आ रहा है। देश में अनुसूचित जाति के 52 प्रतिशत जबकि जनजाति के 63 प्रतिशत बच्चे छठी कक्षा का मुंह नहीं देख पाते। विभिन्न सर्वेक्षणों एवं अध्ययनों में दलित बच्चों की इस स्थिति का कारण, निम्न आर्थिक स्थिति नहीं अपितु उनके साथ किया जाने वाला जातिगत भेदभाव है। 'शिक्षा मानव और मानव के मध्य व्याप्त हर विभेद को समाप्त करने का शस्त्र है', यह तथ्य झूठा सिद्ध होता है। विभिन्न अध्ययन इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि ''शिक्षण संस्थाओं में जातीय भेदभाव के चलते छात्र न केवल हीनभावना का शिकार हो रहे हैं बल्कि कई बार तो अपमान और उपेक्षा के चलते अपनी पढ़ाई को बीच में ही छोड़ देते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में कमज़ोर तबकों के लिए क़दम-क़दम पर ख़तरे हैं। वे वहां तक पहुंचने के लिए खूब मेहनत करते हैं, मगर वहां पहुंचने के बाद उनका आत्मविश्वास चकनाचूर हो जाता है'' दलित परिवार में जन्म क़दम-क़दम पर सामाजिक तिस्कार और दूसरी मुश्किलों का पर्याय है। सच तो यह है कि छूआछूत और जातिगत भेदभाव मानवता के प्रति सबसे गंभीर अपराध है। यह नस्ल भेद से भी भयावह और निंदनीय है।

शिक्षा के अधिकार का हनन देश की बालिकाओं और दलित छात्रों के साथ ही नहीं हो रहा, यही स्थिति 'विशेष बच्चों' की भी है। संविधान के अनुसार 18 साल तक के विशेष बच्चों को नि:शुल्क शिक्षा मुहैया कराने का दायित्व सरकार का है। राज्य सभा में शिक्षा का अधिकार कानून में संशोधन कर शारीरिक रूप से अक्षम बच्चों को शिक्षा कर अधिकार दिया गया है। बीमार और विकलांग बच्चों को आर्थिक रूप से कमज़ोर कोटे के तहत स्कूलों में दाखिला पाने का अधिकार होगा। विशेष बच्चों (मूक, बधिर, नेत्रहीन और मंदबुद्धि बच्चों) को उचित शिक्षा देने के लिए निजी स्कूलों को मार्च 2013 तक विशेष शिक्षकों की नियुक्ति करने के आदेश दिल्ली उच्च न्यायालय ने दिए थे।

इस समय देशभर में क़रीब 2 करोड़ 'विशेष बच्चे' हैं, जिनमें से एक प्रतिशत से भी कम बच्चे सरकारी और निजी स्कूलों में पढ़ रहे हैं। इसके साथ ही विशेष बच्चों को ज़रूरत के मुताबिक घर बैठे शिक्षा पूरी करने का विकल्प भी इस विधेयक का भाग रहा है। बच्चों के नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा संशोधन विधेयक में मानव संसाधन मंत्री ने यह स्पष्ट किया कि कई तरह की विकलांगताएं झेल रहे बच्चों के लिए घर बैठे शिक्षा की व्यवस्था की जा सकेगी।

विशेष बच्चों को मुख्यधारा में शामिल करने की पहल चार वर्ष पूर्व एक जनहित याचिका से शुरू हुई। 16 सितंबर, 2009 को उच्च न्यायालय ने राजधानी के सभी सरकारी एवं स्थायी निकायों के स्कूलों में विशेष श्रेणी के इन बच्चों को उपयुक्त शिक्षा देने के लिए छह माह के भीतर कम-से-कम दो विशेष प्रशिक्षित शिक्षक नियुक्त करने को कहा लेकिन इन आदेशों का पालन नहीं हुआ। नवंबर 2011 में पहले दिल्ली सरकार और बाद में नगर निगम ने भी अपने स्कूलों के लिए, वर्तमान में एक-एक विशेष शिक्षक नियुक्त किए जाने की प्रक्रिया शुरू की थी। स्वावलंबी बनने हेतु शिक्षा प्रथम पायदान है क्योंकि बिना अक्षर ज्ञान के जीवन की विकटताएं और बढ़ जाती हैं और इसीलिए 'सर्वशिक्षा अभियान' जैसी योजनाओं के माध्यम से समस्त भारत को शिक्षित करने का प्रयास किया जा रहा है। देश का प्रत्येक बच्चा, भावी निर्माणकर्त्ता है फिर चाहे वह किसी भी प्रकार की विकलांगता का शिकार क्यों न हो। विशेष बच्चों को भी आम बच्चों की तरह शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार है पर क्या इन बच्चों के लिए रास्ते इतने सहज हैं जितने कि आम बच्चों के लिए होते हैं? 1995 में विकलांग (समान अवसर अधिकारों का संरक्षण एवं पूर्ण सहभागिता) अधिनियम बना जिसे 1996 में लागू किया गया। इस अधिनियम में विकलांगजनों के प्रति समाज के उत्तरदायित्व को निर्धारित किया गया जिससे समाज में यह अपेक्षा की गई कि वह विकलांग व्यक्तियों के साथ समायोजन करें। परंतु आज भी विकलांग बच्चों के लिए बनी समस्त योजनाएं सिवाय कागज़ी किले से ज्यादा कुछ साबित नहीं हुई हैं, क्योंकि ऐसी शिक्षण संस्थाओं की संख्या नाममात्र की है जहां विकलांग बच्चों की बुद्धि के स्तर को नापने की सुविधाएं उपलब्ध हों, और हैं भी तो कुछ बड़े शहरों में। देश में ऐसे स्कूलों को ढूंढ़ना रेत में सूई ढूंढने जैसा है जहां विकलांग बच्चों की शिक्षा हेतु समस्त साधन हों। भारत के सरकारी एवं निजी शिक्षा संस्थाओं में ऐसे शिक्षकों की नियुक्ति नहीं की गई है जो मंदबुद्धि बच्चों को उनके स्तर तक आकर पढ़ा सके, जो विकलांग बच्चों को पढ़ा सके, ऐसे शिक्षकों के अभाव में क्या यह संभव नहीं है कि ये बच्चे मुख्यधारा से जुड़े स्कूलों में पढ़ सकें? समस्या यहीं समाप्त नहीं होती। भारत में ऐसे बच्चों की संख्या भी बहुत है जो पोलियो या किसी अस्थि रोग से पीड़ित हैं, या तो दृष्टिबाधित हैं या मूक-बधिर हैं। उनकी सुविधा के लिए आम स्कूलों से लेकर देश के प्रतिष्ठित विद्यालयों में रैंप की सुविधाओं का अभाव है जिसके चलते वे बच्चे जो व्हीलचेयर या बैसाखी का प्रयोग करते हैं, इन स्कूलों में जाने से कतराते हैं।

एक ओर जहां विशेष बच्चों के शिक्षण का मुद्दा गंभीर विषय बना हुआ है वहीं दूसरी ओर स्कूल के भवन और प्रशासनिक व्यवस्था, विशेष बच्चों के अनुकूल बन सके यह एक चुनौती बनी हुई है। इस दिशा में सीबीएसई ने स्कूलों को सुनिश्चित करने के लिए कहा है कि शारीरिक रूप से अक्षम बच्चों के लिए स्कूलों में हॉस्टल, पुस्तकालय, लैब और इमारतों को अवरोधमुक्त बनाएं। वहीं बोलने वाली पुस्तकें, पढ़ने वाली मशीन और स्पीच सॉफ्टवेयर के साथ स्कूलों में कंप्यूटर उपलब्ध कराया जाए। साथ ही स्कूलों को सुनिश्चित

करना होगा कि ऐसे बच्चों को मुख्यधारा वाले स्कूलों में दाखिले से मना नहीं किया जाए। सीबीएसई ने सभी स्कूलों को निर्देशित करते हुए, यह स्पष्ट किया कि ऐसे बच्चों के लिए स्कूलों में रैंप शौचालय, व्हीलचेयर लिफ्ट और एस्केलेटर में चिहिन्त का इस्तेमाल ज़रूर करें। स्कूलों में बच्चों को सुविधाएं उपलब्ध न कराए जाने के कारण बच्चे खुद को उपेक्षित महसूस करते हैं। यदि विकलांगता से ग्रसित बच्चों की सहायता करनी है तो उन्हें मुख्यधारा से जोड़ना चाहिए। ऐसे बच्चों को दया नहीं अपितु सामाजिक एवं सरकारी दोनों स्तरों पर गहरी संवेदनशीलता की आवश्यकता है जो उनमें आत्मसम्मान जाग्रत कर सके। शिक्षा न केवल साक्षरता प्रदान करती है अपितु 'स्व' को भी जाग्रत करती है और यही 'स्व' व्यक्तित्व निर्माण का मूल है। समाज के हर व्यक्ति को यह समझना होगा कि ईश्वर किसी को भी पूर्णतया रिक्त करके नहीं भेजता और विकलांग बच्चों में भी गहरी प्रतिभाएं छुपी होती हैं। सरकारी स्तर पर भी ऐसे प्रयासों की आवश्यकता है, जिससे विकलांग बच्चे मुख्यधारा में जुड़ सकें, अन्यथा शिक्षित भारत का स्वप्न अधूरा ही रहेगा।

यह एक निर्विवादित सत्य है कि देश में व्याप्त इन असमानताओं को एक पल में दूर नहीं किया जा सकता। परंतु हमें यह स्वीकारना ही होगा कि अगर संपूर्ण भारत को शिक्षित करना हो तो उन तमाम बाधाओं को दूर करने के प्रयास करने ही होंगे जिससे देश का कोई भी बच्चा शिक्षा के अधिकार से वंचित न रहे इसके लिए ऐसी नीतियों का निर्माण करना होगा जो विशेषकर बालिकाओं, दलित छात्रों और विशेष छात्रों के लिए ही हों और इसमें सामाजिक सेवा संस्थाओं की भागीदारिता अपरिहार्य होगी जोकि क्षेत्र विशेष की बाधाओं को समझती हो और उनके निराकरण में सहयोग कर सकें। किसी भी विशेष उद्देश्य पूर्ति के लिए भगीरथ प्रयासों की आवश्यकता होती है और जब देश को शिक्षित करने का प्रश्न हो तो यकीनन जन जाग्रति और सरकारी नीति का सही ढंग से क्रियान्वयन अपनी महती भूमिका निभाएगा। ❑

(लेखिका समाजशास्त्र की प्राध्यापक हैं।
ई-मेल : sarswatritu@yahoo.com)

(पृष्ठ 47 का शेषांश)

संप्रेषण प्रक्रिया से बाहर रह गए लोग हैं जोकि अपनी तादाद में बहुसंख्यक हैं। ऐसे में कैसे समानता स्थापित हो सकती है? कैसे संविधान द्वारा प्रदत्त सामाजिक विकास और सभी को विकास के समान अवसर (अनुच्छेद-15) देने का दायित्व सरकारें पूरा कर सकती हैं? इसके लिए जरूरी है कि सरकारी शिक्षा को मज़बूत किया जाए। विश्व के विकसित देश जो निजीकरण के बड़े पैरोकार हैं वहां अभी भी शिक्षा सार्वजनिक क्षेत्र में है। फिनलैंड जैसे देशों से हमें सीखना चाहिए। फिनलैंड विश्व के उन देशों में से एक है जिसकी स्कूली शिक्षा की गुणवत्ता विश्व में सबसे अव्वल है। इसका कारण शिक्षा में समानता, प्रतिस्पर्धा की जगह सहयोग पर ज़ोर तथा शिक्षा में ख़र्च की पूरी जिम्मेदारी सरकार द्वारा लेना है। वहां पर कोई भी निजी स्कूल नहीं है। किसी भी स्कूल को फीस लेने की इज़ाजत नहीं है। हर स्कूल में नि:शुल्क भोजन, इलाज तथा मनोवैज्ञानिक परामर्श और मार्गदर्शन दिया जाता है।

सबको शिक्षा और समानतामूलक शिक्षा का मसला गुणवत्ता से भी जुड़ा हुआ है। यदि गुणवत्तापूर्ण शिक्षा नहीं दी जाती है तो ऐसी शिक्षा का दिया जाना किसी मतलब का नहीं है। शिक्षक-छात्र का जो मौजूदा अनुपात (1:30) तय किया गया है उससे कितनी गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्राप्त की जा सकती है यह समझा जा सकता है। एक शिक्षक द्वारा एक समय में एक से अधिक कक्षाओं और स्तरों के बच्चों को पढ़ाने से बच्चों को शिक्षा नहीं सरकारी प्रमाण-पत्र ही दिया जा सकता है। सरकारी स्कूलों की इसी कमज़ोरी के चलते आज हर अभिवावक अपनी हैसियत के अनुकूल अपने बच्चों को निजी स्कूलों में पढ़ाना चाह रहा है। इसके लिए क्या कहीं न कहीं सरकार की नीतियां जिम्मेदार नहीं हैं? आज एक बड़ा वर्ग अभाव ग्रस्त शिक्षा प्राप्त करने के लिए विवश क्यों है? क्या सरकार को इस अभाव को दूर नहीं करना चाहिए? शिक्षाविदों का मानना है कि शिक्षा मानव को बौद्धिक और भावनात्मक रूप से इतना मज़बूत और दृष्टिवान बनाती है कि वह स्वयं ही आगे बढ़ने का रास्ता, ज्ञान के सृजन का रास्ता और उसके सहारे अपने और अपने समाज के विकास का रास्ता ढूंढने योग्य हो जाता है। क्या हमारी शिक्षा ऐसा कर पा रही है? इस दिशा में गंभीरतापूर्वक विचार कर ईमानदारी से आगे बढ़ने की आवश्यकता है। ❑

(लेखक *शैक्षिक दखल* **पत्रिका के संपादक हैं।**
ई-मेल : 262501punetha.mahesh@gmail.com)

(पृष्ठ 49 का शेषांश)

अन्य ख्यात एनजीओ विवेकानंद अब कच्छ के बाहर विपरीत परिस्थितियों में काम कर रहे हैं।

मुझे इंडियन सोसाइटी ऑफ एग्रीकल्चरल इकोनॉमिक्स का पहला फेलो चुना गया था, जिसे मैं किसी मंत्री पद से भी बड़ा सम्मान मानता हूं। मुझे आमंत्रित किया गया था। *सोसाइटी जर्नल* के मार्च 2011 अंक में अपनी स्वीकृति संबोधन में मैंने कृषि के लिए किए जाने वाले कार्यों के बारे में बारहवीं योजना के अप्रोच पेपर से अलग हटकर संबोधित किया। मैंने पानी, बाज़ार की कमी, ग्रामीण-शहरी अंतराल जिसमें ग्रामीण अपने उत्पाद, तक़नीक के साथ आते हैं, गलत नीतियों से वैविध्यपूर्ण कृषि को हो रही हानि और उनकी पहचान और उपायों के बारे में कहा था। मैंने मनरेगा और खाद्य सुरक्षा पर केंद्रित उपायों की बात की। अगर आप अपनी आय में विविधता नहीं लाते, तो आपकी तरक्की नहीं हो सकती। उसके लिए आधारभूत ढांचा और तक़नीक की ज़रूरत होती है। बीज भी महत्वपूर्ण कारक हैं। हमें मनरेगा और खाद्य सुरक्षा की ज़रूरत इसलिए है, क्योंकि हमें विश्व इतिहास से यह सबक मिला है कि कृषि में बदलती तक़नीक की वज़ह से मज़दूरी में भी इज़ाफा हुआ है। यह उससे अलग नहीं है जैसा सप्रग के सलाहकार बर्राह साहब कहते हैं। इंग्लैंड और यूरोप के आर्थिक इतिहास की कोई भी पुस्तक पढ़ लें। ये सभी समस्याएं बोरकोला ग्राम पंचायत, वातामन चौकी और दाहोद के जनजातीय इलाक़ों जैसी ही हैं। जो लोग पीछे रह गए हैं, जब तक वे साथ नहीं आ जाते, हमें मनरेगा और खाद्य सुरक्षा की ज़रूरत पड़ेगी ही। ❑

(लेखक प्रख्यात अर्थशास्त्री एवं वर्तमान में गुजरात केंद्रीय विश्वविद्यालय के कुलपति हैं। वह भारत के ऊर्जा, नियोजन, विज्ञान और प्रौद्योगिकी मंत्री भी रह चुके हैं।
ई-मेल : yalagh@gmail.com)

भारत के 66 वर्ष

एक राष्ट्र गाथा

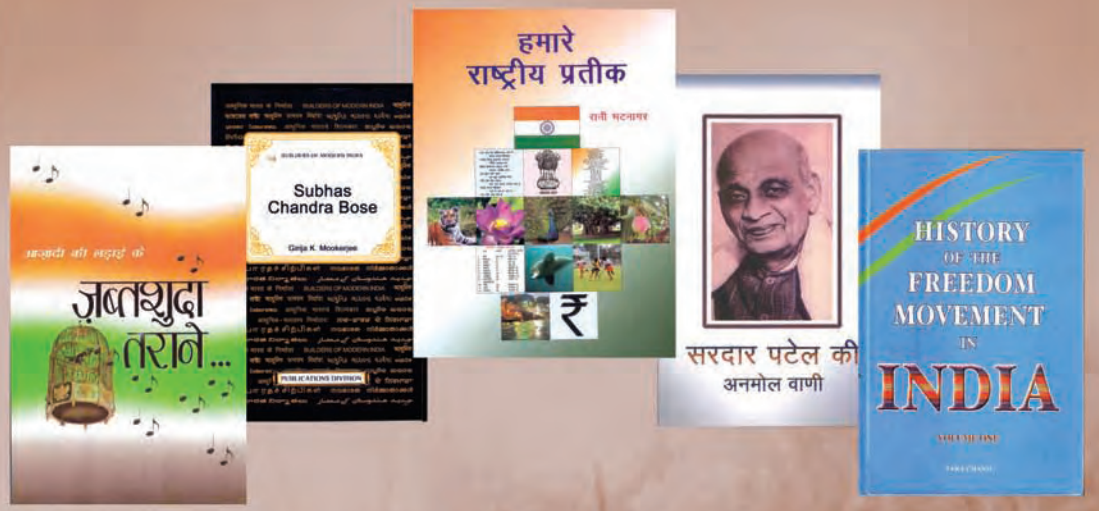

स्वतंत्रता संघर्ष

- भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास (भाग 1-4)
- स्वतंत्रता के लिए भारत का संघर्ष
- 'गदर' के पहले और बाद का भारत
- स्वतंत्रता के लिए भारत के संघर्ष की कहानी
- आईएनए की कहानी

आधुनिक भारत के निर्माता

- बाबू जगजीवन राम
- सरदार बल्लभ भाई पटेल
- दादाभाई नौरोजी
- लाला लाजपत राय: जीवन और कर्म
- सुभाष चंद्र बोस

कला एवं संस्कृति

- कोणार्क- द ब्लैक पैगोडा
- द आई इन आर्ट
- कला में नटराज- विचार और साहित्य
- दक्षिण भारतीय चित्र
- गुजरात की काष्ठ नक्काशी

प्रकाशन विभाग
सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय
भारत सरकार
सूचना भवन, सी.जी.ओ कॉम्पलेक्स,
लोधी रोड, नई दिल्ली-110003
ईमेल: dpd@sb.nic.in
businesswng@gmail.com
टेलीफोन-011-24367260, 24365609

और भी बहुत कुछ..... *.....अधिक जानकारी के लिए हमारी वेबसाइट : publicationdivision. nic.in देखें।*

प्रकाशक व मुद्रक : ईरा जोशी, अपर महानिदेशक (प्रमुख) द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए ब्रजबासी आर्ट प्रेस लिमिटेड, ई-46/11, ओखला औद्योगिक क्षेत्र, फेस-2, नयी दिल्ली-110 020 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉप्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110 003 से प्रकाशित। वरिष्ठ संपादक : रेमी कुमारी

रजि.सं.डीएल (एस)-05/3231/2012-14
Reg. No. D.L.(S)-05/3231/2012-14 at RMS, Delhi
23 अगस्त, 2013 को प्रकाशित • 29-30 अगस्त, 2013 को डाक द्वारा जारी

Licenced under U (DN)-55/2012-14
आर.एन.आई. 951/57
R.N.I. 951/57

क्या आप

बैंक

पिछले वर्षों के हल प्रश्न-पत्रों सहित

प्रोबेशनरी ऑफीसर्स मैनेजमेंट ट्रेनीज

सम्मिलित लिखित परीक्षा

में सम्मिलित हो रहे हैं, तो पढ़िए...

उपकार की पुस्तकें

Code 1168
₹ 375/-

Code 1152
₹ 440/-

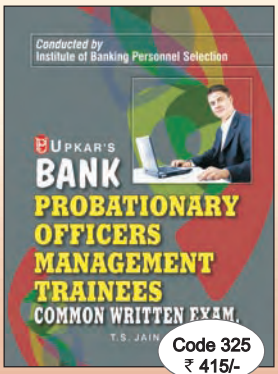

Code 325
₹ 415/-

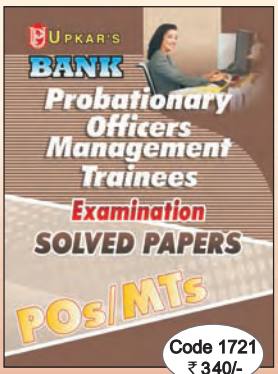

Code 1721
₹ 340/-

योग्य एवं अनुभवी लेखकों द्वारा लिखित पुस्तकें जो आपको महत्वपूर्ण परीक्षोपयोगी विषय-वस्तु उपलब्ध कराने के साथ-साथ परीक्षा में आपका उचित मार्गदर्शन भी करेंगी.

अन्य उपयोगी पुस्तकें

Code 671
₹ 310/-

Code 2184
₹ 65/-

Code 1401
₹ 65/-

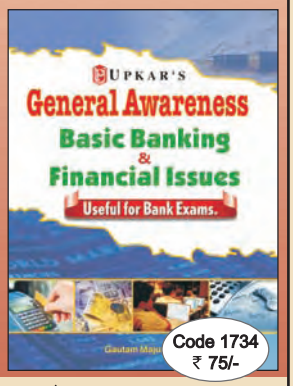

Code 1734
₹ 75/-

उपकार प्रकाशन
E-mail : care@upkar.in
Website : www.upkar.in

2/11 ए, स्वदेशी बीमा नगर, आगरा – 282 002 फोन : 4053333, 2531101, 2530966; फैक्स : (0562) 4053330
ब्रॉंच आफिस : • 4845, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002 फोन : 23251844/66
• 1-8-1/B, आर. आर. कॉम्प्लेक्स (सुन्दरैया पार्क के पास, मनसा एन्क्लेव गेट के बगल में), बाग लिंगमपल्ली, हैदराबाद-44 फोन : 66753330
• पीरमोहनी चौक, कदमकुआँ, पटना-800 003 फोन : 2673340
• 28, चौधरी लेन, श्याम बाजार (मेट्रो स्टेशन के निकट) कोलकाता-700 004. (W.B.) मो. : 7439359515

YH-117/2013